भाग तीन

अध्याय पैंतीस

ईश्वर का शान्त प्रेम

(शान्त भक्तिरस)

श्री रूप गोस्वामी नित्य भगवान् की सादर स्तुति करते हैं जो अतीव सुन्दर हैं और जिनकी दिव्य प्रेमा-भक्ति में शुद्ध भक्त सदैव तल्लीन रहते हैं। *भक्तिरसामृतसिन्धु* के इस तृतीय भाग में पाँच प्रारम्भिक प्रकार की भक्ति का वर्णन हुआ है। ये हैं—*शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य* तथा *माधुर्य* भक्ति। इन पाँचों की अतीव विस्तार से व्याख्या की जायेगी। इन पाँचों को *भक्ति-रसामृत-सिन्धु* के पश्चिमी तट पर पाँच लहरियों के रूप में वर्णित किया गया है।

जब कोई अपने दिव्य पद को सचमुच बनाये रखने में समर्थ होता है तो उसकी यह अवस्था शान्त (निरपेक्ष) भक्ति कहलाती है। कतिपय महर्षियों ने इन्द्रियों को वश में करने के लिए तपस्या तथा ध्यान का अभ्यास करके इस शान्त पद को प्राप्त किया है। ऐसे महर्षि सामान्यतया *योगी* कहलाते हैं और वे परब्रह्म के निर्विशेष (निराकार) स्वरूप के आध्यात्मिक आनन्द की प्रशंसा करते हैं। वे एक तरह से परमेश्वर के निजी सान्निध्य से प्राप्त दिव्य आनन्द से अनभिज्ञ रहते हैं।

वस्तुत: परम पुरुष के सान्निध्य से प्राप्त होने वाला दिव्य आनन्द निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति से प्राप्त होने वाले आनन्द से कहीं बढ़कर है, क्योंकि इसमें भगवान् के नित्य स्वरूप से प्रत्यक्ष भेंट होती है। निर्विशेषवादियों को भगवान् की लीलाओं के श्रवण से उनके सान्निध्य का दिव्य सुख प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिए उन्हें *भगवद्गीता* की कथा से आस्वाद्य दिव्य आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता जहाँ भगवान् स्वयं अर्जुन से बात करते हैं। उनकी निर्विशेष प्रवृत्ति का मूल सिद्धान्त उन्हें उस दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं करने देता जिसका आस्वादन उस भक्त द्वारा किया जाता है जिसके ज्ञान का मूल सिद्धान्त परम पुरुष है। इसलिए *भगवद्गीता* पर निर्विशेषवादी टीका घातक होती है, क्योंकि निर्विशेषवादी गीता के दिव्य आनन्द को समझे बिना ही अपने ढंग से उसकी व्याख्या करना चाहता है। किन्तु यदि कोई निर्विशेषवादी शुद्ध

भक्त के संसर्ग में आ सके तो उसकी दिव्य स्थिति और उच्च हो सकती है। इसलिए, महर्षियों को भगवान् के स्वरूप (अर्चाविग्रह) की पूजा करने की सलाह दी जाती है जिससे उन्हें सर्वोच्च दिव्य आनन्द प्राप्त हो सके।

अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे ग्रंथों को नहीं समझा जा सकता। जो महर्षि दिव्य शान्त रस के पद पर आसीन हैं उन्हें चाहिए कि सर्वप्रथम भगवान् के चतुर्भुज-रूप भगवान् विष्णु की शरण में जायँ। इसलिए योगियों को सलाह दी जाती है कि वे भगवान् विष्णु के उस रूप का ध्यान करें जिसकी संस्तुति कपिल मुनि द्वारा *सांख्य योग* विधि में की गई है। दुर्भाग्यवश, अनेक योगी शून्य का ध्यान करते हैं, किन्तु जैसा कि *गीता* में कहा गया है, इसका परिणाम यह निकलता है कि वे कष्ट ही उठाते हैं और उन्हें कोई उल्लेखनीय फल प्राप्त नहीं होता।

जब कुछ महात्माओं ने तपस्या के पश्चात् भगवान् विष्णु के चतुर्भुज दिव्य-रूप का दर्शन किया तो उन्होंने कहा, "नील रंग वाले चतुर्भुज भगवान् समस्त आनन्द के आगार एवं हमारे प्राण के केन्द्रबिन्दु हैं। वस्तुतः जब हम विष्णु के इस शाश्वत स्वरूप का दर्शन करते हैं तो अनेक अन्य परमहंसों के साथ-साथ हम भी भगवान् के सौन्दर्य पर तुरन्त मुग्ध हो जाते हैं।" सन्तों द्वारा भगवान् विष्णु की यह प्रशंसा *शान्त रस* की स्थिति का उदाहरण है। जो लोग मोक्ष के कामी हैं वे प्रारम्भ में ही कष्टप्रद तपस्या करके भवबन्धन से छूटने का प्रयास करते हैं और अन्ततः वे आध्यात्मिक अनुभूति की निर्विशेष दशा को प्राप्त होते हैं। भवबन्धन से मोक्ष की इस *ब्रह्मभूत* अवस्था में, जैसा *भगवद्गीता* में कहा गया है, मनुष्य लालसा या विषाद से रहित होकर प्रफुल्लित बनता है और उसे विश्वजनीन दृष्टि प्राप्त होती है। जब भक्त शान्त रस में स्थित होता है तो वह भगवान् के विष्णु रूप का प्रशंसक बन जाता है। वास्तव में सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति का लक्ष्य भगवान् विष्णु को समझना है। *ऋग्वेद* के एक मंत्र में कहा गया है कि कोई भी उन्नत सन्त पुरुष सदैव विष्णु के चरणकमलों के ध्यान में स्थिर होने की आकांक्षा करता है।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि मूर्खों को यह पता नहीं रहता कि विष्णु ही जीवन के चरम लक्ष्य हैं। समस्त प्रामाणिक वैदिक शास्त्रों का यही निर्णय है कि जब मनुष्य विष्णु की प्रशंसा करने लगता है तो समझिये कि उसकी भक्ति का शुभारम्भ हो रहा है। यदि समुचित मार्गदर्शन के अन्तर्गत भक्ति का उत्तरोत्तर अनुशीलन किया जाता है तो भक्ति के अन्य गुण क्रमशः प्रकट होने लगते हैं। शान्त रस की इस अवस्था

में मनुष्य को भगवान् विष्णु के दर्शन हो सकते हैं जो असुरों तक के उद्धारक हैं। ऐसे भावी भक्तों द्वारा भगवान् नित्य दिव्य स्वरूप, समस्त स्वरूप-सिद्धों के प्रमुख, परमात्मा तथा परब्रह्म के रूप में प्रशंसित होते हैं। वे पूर्णतः शान्त, संयमित तथा शुद्ध भक्तों पर कृपालु एवं किसी भी भौतिक दशा से निर्लिप्त माने जाते हैं। सन्तों द्वारा भय (विस्मय) तथा आदर (गौरव) के साथ भगवान् की यह प्रशंसा इसका प्रतीक है कि वे शान्त रस में स्थित हैं।

शान्त रस की यह अवस्था निर्विशेषवादियों को तभी प्राप्त हो सकती है जब वे शुद्ध भक्तों की संगति करें अन्यथा यह सम्भव नहीं। ब्रह्म साक्षात्कार के बाद जब मुक्तात्मा भगवान् के शुद्ध भक्त के सम्पर्क में आता है और भगवान् कृष्ण के उपदेशों को बिना मीन-मेष के विनीत भाव से ग्रहण करता है तो वह भक्ति के शान्त रस के पद को प्राप्त करता है। शान्त रस में स्थित सन्त पुरुषों का सर्वोत्तम उदाहरण सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार—चारों कुमार हैं। ये चारों महात्मा (*चतुःसन*) ब्रह्माजी के पुत्र हैं। जन्म के बाद जब इनके पिता ने इन्हें गृहस्थ बनकर मानव समाज की वृद्धि करने का आदेश दिया तो इन्होंने उसे ठुकरा दिया। इन्होंने कहा कि हमने पहले से पारिवारिक जीवन में न फँसने का निश्चय किया है। हम अपनी सिद्धि के लिए साधु ब्रह्मचारी के रूप में रहेंगे। अतएव लाखों वर्षों से ये महान सन्त इसी प्रकार रह रहे हैं और आज भी ये चार-पाँच वर्ष के बालकों सरीखे लगते हैं। इनका रंग गोरा है, इन के शरीर में तेज है और वे सदैव नंगे विचरते हैं। ये चारों सन्त पुरुष प्रायः साथ-साथ रहते हैं।

चारों कुमारों ने अपनी एक स्तुति में यह घोषणा की है "हे मुकुन्द (मोक्षदाता कृष्ण)! जब तक कोई सन्त पुरुष आपके सच्चिदानन्द स्वरूप को, जो नवविकसित तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण का है, नहीं देख पाता तभी तक उसे ब्रह्म का निर्विशेष स्वरूप (निराकार) अत्यन्त सुहावना लगता है।"

भक्तिरसामृतसिन्धु में सन्त पुरुष की योग्यताओं का वर्णन निम्नवत् हुआ है। सन्त पुरुष वह है जो यह भलीभाँति समझता है कि एकमात्र भक्ति करने से वह मुक्ति के लिए आश्वस्त हो सकता है। वह सदैव वैधी भक्ति में रहते हुए भवबन्धन से छूटने की कामना करता है।

एक सन्त पुरुष इस तरह सोचता है, "मैं पर्वत की कन्दराओं में कब अकेला रह सकूँगा? मैं केवल लँगोट पहन कर कब रह सकूँगा? कब मैं कुछ फल तथा शाक

खाकर संतुष्ट हो सकूँगा? कब सम्भव होगा कि मैं ब्रह्म तेज के उद्गम मुकुन्द के चरणकमलों का ही सदैव चिन्तन कर सकूँ? कब ऐसे आध्यात्मिक जीवन में मैं पूरी तरह समझ सकूँगा कि मेरे दिन तथा रात नित्य काल में नगण्य क्षणों के समान हैं?''

वे भक्तजन तथा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति जो भगवान् के यशोगान का प्रसार करने में लगे हुए हैं, अपने-अपने अन्तःकरणों में कृष्ण-रति सदैव बनाये रहते हैं। इसलिए वे भावमय चन्द्रमा की किरणों से लाभान्वित होते हैं और वे ही सन्त पुरुष कहलाते हैं।

सन्त पुरुषों में वेदाध्ययन करने, विशेषतया उपनिषदों को पढ़ने, जनसामान्य की परेशानी से दूर एकान्त स्थान में रहने, कृष्ण के नित्य स्वरूप का सदैव चिन्तन करने, परम सत्य पर विचार करने और समझने के लिए सदा उद्यत रहने, ज्ञान के प्रदर्शन में अग्रणी रहने, विश्व के रूप में भगवान् का दर्शन करने, विद्वान भक्तों की संगति करने तथा वेदों के निर्णय के विषय में अपने समान महापुरुषों से विचार-विमर्श करने की प्रवृत्ति होती है। सन्त पुरुष के ये सारे गुण उसे *शान्त-रस* के पद पर पहुँचाने वाले हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु में बतलाया गया है कि जो लोग उपनिषदादि वैदिक वाङ्मय के अध्ययन हेतु ब्रह्माजी द्वारा आयोजित पुण्य गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे वे यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण के भावमय प्रेम (रति) से अभिभूत हो गये। वस्तुतः उपनिषदों के अध्ययन का फल यह होता है कि भगवान् को समझा जा सकता है। संसार का निषेध तो उपनिषदों के विषयों में केवल एक विषय है। दूसरा विषय है निर्विशेष अनुभूति में स्थित हो जाना। और फिर जब निर्विशेष ब्रह्म को भेद कर मनुष्य भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के पद तक पहुँचता है तो वह उपनिषदों के अध्ययन के चरम लक्ष्य को प्राप्त होता है।

जो लोग शान्त रस के पद पर स्थित हैं वे भगवान् के चरणकमलों पर अर्पित तुलसी दल को सूँघ कर, उनके शंख की ध्वनि सुनकर, किसी पर्वत पर किसी पवित्र स्थल का दर्शन करके, वृन्दावन जैसा वन देख कर, तीर्थस्थान जाकर, गंगा नदी के पथ को देखकर, शारीरिक आवश्यकताओं—आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन—पर विजय पाकर, नित्य काल के संहार को समझ कर तथा कृष्ण भक्ति में लगे भक्तों की निरन्तर संगति करके, भक्ति में आगे बढ़ने की प्रेरणा पाते हैं। शान्त रस में स्थित सन्त पुरुषों को ऊपर उठा कर भक्ति की उच्च अवस्था तक ले जाने में इन सबका बड़ा योगदान है।

श्रीमद्भागवत में (३.१५.४३) चतुःसन नाम से विख्यात सनककुमारादि का एक कथन प्राप्त होता है। वे वैकुण्ठपति से मिलने वैकुण्ठलोक गये और जब उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया तो उन्हें केसर मिश्रित तुलसी की सुगन्ध मिली जिससे उनके मन तुरन्त आकृष्ट हो गये। यद्यपि ये चारों सन्त कुमार निर्विशेष ब्रह्म के ही विचार में तल्लीन रहते थे, किन्तु भगवान् से सान्निध्य तथा तुलसी दल की सुगन्ध से उन्हें तुरन्त रोमांच हो आया। इससे यह पता चलता है कि ब्रह्म-साक्षात्कार को प्राप्त व्यक्ति भी शुद्ध भक्तों की संगति में रहने से तुरन्त ही भगवान् के साकार स्वरूप के प्रति आकृष्ट हो जाएगा।

शान्त रस को प्राप्त महर्षियों में कतिपय विशेष लक्षण पाये जाते हैं और ये लक्षण इस प्रकार प्रकट होते हैं—वे अपनी दृष्टि को नासिकाग्र पर केन्द्रित करते हैं और *अवधूत* के समान आचरण करते हैं। *अवधूत* का अर्थ है ऐसा महान् योगी जो सामाजिक, धार्मिक या वैदिक परम्पराओं की परवाह नहीं करता। दूसरा लक्षण यह है कि भाषण देते समय ऐसे पुरुष सावधानी से आगे बढ़ते हैं। वे जब बोलते हैं तो अपनी तर्जनी अंगुली तथा अँगूठे को जोड़ लेते हैं (इसे ज्ञान-मुद्रा कहते हैं)। वे न तो नास्तिकों के विरुद्ध होते हैं, न ही भक्तों का पक्षपात करते हैं। ऐसे लोग भौतिक जीवन से मुक्ति और वैराग्य पर बल देते हैं। वे सदैव निरपेक्ष रहते हैं और उनमें किसी भौतिक वस्तु के प्रति न तो स्नेह रहता है न गलत धारणा। वे सदैव गम्भीर, किन्तु भगवान् के विचारों में पूर्णतया तल्लीन रहते हैं। ये असामान्य लक्षण उन भक्तों में विकसित होते हैं जो शान्त रस पद को प्राप्त हैं।

नासिकाग्र पर दृष्टि केन्द्रित करने के सम्बन्ध में *भक्तिरसामृतसिन्धु* में एक ऐसे भक्त का कथन है जिसने किसी योगी को ऐसा करते देखा था। उसने कहा, ''यह महर्षि अपनी दृष्टि को अपनी नाक के अग्रभाग पर केन्द्रित कर रहा है और इससे ऐसा लगता है कि इसने अपने अन्तःकरण में पहले ही भगवान् के नित्य रूप का साक्षात्कार कर लिया है।''

कभी-कभी शान्त रस में भक्त जँभाई लेता है, अंगों को फैलाता है (अँगड़ाता है), भक्ति का उपदेश देता है, भगवान् को सादर नमस्कार करता है, भगवान् की सुन्दर स्तुति करता है और अपने शरीर से उनकी प्रत्यक्ष सेवा करना चाहता है। ये कतिपय सामान्य लक्षण हैं शान्त रस में स्थित भक्त के। एक भक्त ने दूसरे भक्त को जंभाई लेते देखकर उससे कहा, ''हे योगी! मेरे विचार से तुम्हारे हृदय में कोई न कोई भक्ति-

प्रेम अवश्य है जिससे तुम्हें जंभाई आ रही है।'' कभी-कभी पाया जाता है कि शान्त रस में भक्त जमीन पर गिर पड़ता है, उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और उसका सारा शरीर काँपने लगता है। इस प्रकार ऐसे भक्तों में समाधि के विभिन्न लक्षण स्वयमेव प्रकट होते हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा गया है कि जब भगवान् कृष्ण अपना पाञ्चजन्य शंख बजा रहे थे तो पर्वतों की गुफाओं में रहने वाले अनेक बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपनी समाधि से तुरन्त जग पड़े। उन्होंने एकदम देखा कि उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये हैं। कभी-कभी शान्त रस में भक्तगण स्तम्भित, शान्त, प्रफुल्ल, सावधान, चिन्तनशील, उत्सुक, दक्ष तथा तार्किक हो जाते हैं। ये लक्षण स्थायी भाव के सूचक हैं।

एक बार एक आत्मज्ञानी साधु को यह पश्चाताप था कि भगवान् कृष्ण द्वारका में निवास करते हैं, अतएव वह उनके दर्शन नहीं कर पा रहा। यह सोचकर वह साधु तुरन्त स्तम्भित हो गया। वह सोच रहा था कि वह अपने समय का अपव्यय मात्र कर रहा है। दूसरे शब्दों में, वह साधु शोकग्रस्त था कि भगवान् के साक्षात् रहने पर भी वह ध्यान के कारण इसका लाभ नहीं उठा पा रहा है।

जब योगी समस्त प्रकार के मनोधर्मों से ऊपर उठ कर ब्रह्म में स्थित होता है तो उसकी यह दशा समाधि कहलाती है जो जीवन की भौतिक धारणा के प्रभाव से परे है। इस अवस्था में जब कोई भगवान् की दिव्य लीलाओं के विषय में सुनता है तो शरीर में कम्पन हो सकता है।

जब स्थायी समाधि की अवस्था को प्राप्त ब्रह्मभूत भक्त कृष्ण के नित्य स्वरूप के सान्निध्य में आता है तो उसका दिव्य आनन्द करोड़ों गुना बढ़ जाता है। एक बार एक महान् मुनि ने दूसरे से पूछा, ''मित्रवर! क्या आप यह सोचते हैं कि *अष्टांग* योग सिद्धियों को पूरा करने के बाद मैं भगवान् के नित्य स्वरूप का दर्शन कर सकूँगा?'' यह जिज्ञासा भक्ति की शान्त अवस्था को प्राप्त भक्त की उत्सुकता की द्योतक है।

सूर्यग्रहण के अवसर पर जब कृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा भगिनी सुभद्रा के साथ रथ में बैठ कर कुरुक्षेत्र आये तो वहाँ अन्य अनेक योगी भी आये थे। जब इन योगियों ने कृष्ण तथा बलराम को देखा तो वे चीख पड़े कि भगवान् के श्रेष्ठ शारीरिक तेज को देख लेने के बाद अब उन्हें निर्विशेष ब्रह्मसाक्षात्कार से प्राप्त आनन्द का विस्मरण हो गया है। इस प्रसंग में एक योगी कृष्ण के पास जाकर बोला ''हे प्रभु! आप सदैव दिव्य आनन्द से पूरित रहने के कारण अन्य समस्त आध्यात्मिक पदों को मात कर रहे हैं। अतएव दूर से ही आपका दर्शन करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मुझे निर्विशेष ब्रह्म के दिव्य आनन्द में स्थित रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

जब कृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुनकर एक योगी का ध्यान भंग हुआ तो वह इतना भावविह्वल हो गया कि वह अपना सिर जमीन पर पीटने लगा और आँखों में प्रेमाश्रु भर कर उसने योग के सारे विधि-विधानों को तिलांजलि दे दी। इस तरह उसने ब्रह्म-साक्षात्कार की विधि को तुरन्त त्याग दिया।

बिल्वमंगल ठाकुर ने अपनी कृति *कृष्ण-कर्णामृत* में कहा है, ''निर्विशेषवादी निर्विशेष ब्रह्म की पूजा करके दिव्य साक्षात्कार विधि में लगे रहें। यद्यपि मैं भी ब्रह्म साक्षात्कार मार्ग नें दीक्षित हुआ था, किन्तु इस नटखट बालक ने, जो अत्यन्त चतुर है और गोपियों से अनुरक्त रहता है, मुझे विचलित करके अपनी दासी बना लिया है। अतएव मैंने अब ब्रह्म साक्षात्कार विधि को भुला दिया है।''

बिल्वमंगल ठाकुर सर्वप्रथम परम सत्य के निर्विशेष साक्षात्कार के लिए दीक्षित हुए थे, किन्तु बाद में वृन्दावन में कृष्ण के सान्निध्य से वे अनुभवी भक्त बन गये। ऐसा ही शुकदेव गोस्वामी के साथ हुआ, क्योंकि उन्होंने भी भगवान् की कृपा से अपना पुनरुद्धार किया और ब्रह्म-साक्षात्कार के मार्ग को त्याग कर भक्ति मार्ग का अनुसरण किया।

शुकदेव गोस्वामी तथा बिल्वमंगल ठाकुर जिन्होंने भक्ति-मार्ग को अपनाने हेतु, परम सत्य की निर्विशेष धारणा को त्याग दिया था, शान्त रस में स्थित भक्तों के श्रेष्ठ उदाहरण है। कतिपय आचार्यों के अनुसार इस दशा को दिव्य *रस* नहीं माना जा सकता, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी कहते है कि भले ही इसे कोई दिव्य रस न माने तो भी इसे भक्ति की प्रारम्भिक दशा तो मानना ही चाहिए। हाँ, यदि वह भगवान् की वास्तविक सेवा के पद तक नहीं उठ जाता तो उसे दिव्य रस दशा को प्राप्त नहीं माना जा सकता। इस प्रसंग में *श्रीमद्भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान् कृष्ण उद्धव को स्वयं उपदेश देते है, ''मेरे स्वरूप में स्थित होने की दशा *शान्त-रस* कहलाती है और इस दशा में स्थित हुए बिना कोई असली शुद्ध भक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता।'' दूसरे शब्दों में तब तक कोई भगवान् के निजी स्वरूप में स्थित नहीं हो पाता जब तक वह शान्त रस दशा को प्राप्त नहीं हो लेता।

अध्याय छत्तीस

दिव्य स्नेह (प्रीति भक्तिरस)

श्रीधर स्वामी जैसे आचार्यों ने स्नेह के दिव्य रस को भक्ति की सिद्धावस्था माना है। यह शान्त रस के ठीक ऊपर है और दास्य (प्रीति) रस के विकास के लिए आवश्यक है। *नाम-कौमुदी* जैसे ग्रंथ में इस दशा को कृष्ण के प्रति स्थायी प्रीति या आकर्षण माना गया है। शुकदेव जैसे आचार्य इस प्रीति अवस्था को शान्त अवस्था मानते हैं, किन्तु कुछ भी समझें यह प्रीति भक्तों द्वारा विभिन्न रसों में आस्वादन की जाती है, अतएव इस दशा का सामान्य नाम प्रीति अर्थात् कृष्ण के लिए शुद्ध स्नेह है।

प्रीति में रत भक्त कृष्ण के साथ आदरमय प्रीति से जुड़े होते हैं। गोकुल (पृथ्वी पर वृन्दावन रूप में प्रकट) के कतिपय निवासी कृष्ण से आदरमय प्रीति द्वारा जुड़े हुए हैं। वृन्दावन के निवासी कहा करते थे, ''कृष्ण हमारे समक्ष सदैव श्याम बादल जैसे वर्ण में उपस्थित रहता है। वह अपने करकमलों में अपनी अद्भुत वंशी लिए रहता है। वह पीतवस्त्र पहनता है और उसके सिर पर मोरमुकुट सजा रहता है। जब कृष्ण अपनी इन निजी विशेषताओं से युक्त होकर गोवर्धन पर्वत के निकट विचरण करता है तो स्वर्ग के सारे वासी तथा इस धरा के सारे निवासी भी दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं और अपने को भगवान् का नित्य दास समझते हैं।'' कभी-कभी भक्त विष्णु का जो कृष्ण के समान वेशधारण करते हैं और जिनका रंग उन्हीं के समान है चित्र देख कर वैसे ही विस्मय तथा आदर से पूरित हो जाता है। अन्तर इतना ही रहता है कि विष्णु के चार हाथ होते हैं जिनमें वे शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये रहते हैं। भगवान् विष्णु सदैव चन्द्रकान्त मणि तथा सूर्यकान्त मणि जैसे मूल्यवान रत्नों से अलंकृत रहते हैं।

रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* में कृष्ण का एक दास दारुक कहता है, ''निस्सन्देह, भगवान् विष्णु गले में कौस्तुभ मणि का हार पहने, अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये और चमचमाते मणियों से अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। गरुड़ के कंधे पर आसीन अपनी शाश्वत अवस्था में भी वे अत्यन्त सुन्दर

लगते हैं। किन्तु वे ही विष्णु अब कंस के शत्रु रूप में विद्यमान हैं, और उनके इस साकार रूप में मैं वैकुण्ठ के ऐश्वर्य को पूर्णतः भूल रहा हूँ।''

एक अन्य भक्त ने एक बार कहा, ''ये भगवान् जिनके शरीर के रोमों से निरन्तर लाखों ब्रह्माण्ड निकलते हैं, जो दया के सागर हैं, जो अचिन्त्य शक्तियों के स्वामी हैं, जो समस्त सिद्धियों से युक्त हैं, जो समस्त अवतारों के उद्‌गम हैं और समस्त मुक्तात्माओं के आकर्षण हैं—ये ही भगवान् परम नियन्ता तथा परमाराध्य हैं। वे सर्वज्ञ, दृढ़व्रत वाले तथा परम ऐश्वर्यवान, क्षमा के प्रतीक, शरणागतों के रक्षक, उदार, वचनों को पालने वाले, दक्ष, सर्व-मंगलमय, प्रतापी तथा धर्मात्मा हैं। वे शास्त्रों के दृढ़ अनुगामी, भक्तों के मित्र, वदान्य (उदार), प्रभावशाली, कृतज्ञ, प्रतिष्ठित, सम्मानित, शक्ति से पूर्ण, शुद्ध प्रेम के वशीभूत हैं। जो भक्त दास्य भाव से उनके प्रति आकर्षित होते हैं वे उनके एकमात्र आश्रय हैं।''

दास्य भाव वाले भक्तों की चार श्रेणियाँ हैं—अधिकृत (यथा ब्रह्माजी तथा शिवजी जिन्हें रजो तथा तमो गुणों पर नियंत्रण करने के लिए नियुक्त किया जाता है), रक्षित (आश्रित), पार्षद तथा अनुगामी।

अधिकृतदास

कृष्ण की पत्नी जाम्बवती ने अपनी सखी कालिन्दी से बातों-बातों में पूछा, ''हमारे कृष्ण की परिक्रमा करने वाला यह कौन है?

कालिन्दी : यह अम्बिका है जो सारे ब्रह्माण्ड के कामकाज की अधीक्षिका हैं।

जाम्बवती : कृष्ण को देखकर काँपने वाला यह कौन है?

कालिन्दी : ये शिव जी हैं।

जाम्बवती : और यह प्रार्थना करने वाला कौन है?

कालिन्दी : ये ब्रह्माजी हैं।

जाम्बवती : भूमि पर गिर कर प्रणाम करने वाला वह कौन व्यक्ति है?

कालिन्दी : वे स्वर्गराज इन्द्र हैं।

जाम्बवती : वह कौन व्यक्ति है जो देवताओं सहित आया है और उनके साथ परिहास कर रहा है?

कालिन्दी : वह मेरा बड़ा भाई यमराज है जो मृत्यु का अधीक्षक है।

इस वार्तालाप से पता चलता है कि यमराज समेत सारे देवता, जो भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं, उन्हीं के द्वारा नियुक्त रहते हैं। ये *अधिकृत देवता* कहलाते हैं जो विशेष प्रकार की विभागीय सेवा के लिए नियुक्त हैं।

आश्रित (रक्षित) भक्त

एक बार एक वृन्दावनवासी ने भगवान् कृष्ण से कहा, ''हे कृष्ण! हे वृन्दावन के आनन्द! हमने इस संसार के भय से आपकी शरण ग्रहण की है, क्योंकि आप हमारी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हैं। हम आपकी महानता से अवगत हैं, अतएव हमने मुक्ति की आशा छोड़ दी है और आपके चरणकमलों की पूर्ण शरण ले ली है। जब से हमने आपके नित्य वर्धमान दिव्य प्रेम के विषय में सुना है, हम स्वेच्छा से आपकी दिव्य सेवा में संलग्न हो गए हैं।'' यह कथन है उस भक्त का जो भगवान् कृष्ण के संरक्षण एवं आश्रय में है।

कृष्ण द्वारा बारम्बार फन पर प्रताड़ित होकर यमुना के काले नाग कालिय को चेतना आई तो उसने स्वीकार किया ''हे प्रभु! मैं कितना अपराधी हूँ, किन्तु आप इतने दयालु हैं कि आपने मेरे सिर पर अपने चरणचिह्न अंकित कर दिये हैं।'' यह भी कृष्ण के चरणकमलों में शरणागत होने का उदाहरण है।

अपराध-भंजन में एक शुद्ध भक्त अपनी भावनाएँ इस प्रकार व्यक्त करता है—''हे भगवान्! मुझे आपके सामने यह स्वीकार करते हुए लज्जा आती है कि मैंने अपने स्वामियों के अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या के आदेशों का पालन किया है। कभी-कभी मैंने उनके आदेशों का पालन अत्यन्त जघन्य प्रकार से किया है। फिर भी, उनके प्रति निष्ठापूर्वक सेवा करने के बावजूद, वे तुष्ट नहीं होते और न ही अपनी सेवा से निवृत्त करने की मुझ पर कृपा करते हैं। वे इस प्रकार मेरी सेवा लेने पर लज्जित भी नहीं होते। हे भगवान्, हे यदुवंश के अग्रणी, मैं अब होश में आ गया हूँ और आपके चरणकमलों की शरण ले रहा हूँ। कृपया मुझे अपनी सेवा में लगाइ।'' यह कृष्ण के चरणकमलों में समर्पित होने और शरण लेने का एक अन्य उदाहरण है।

विविध वैदिक ग्रंथों में ऐसे अनेक व्यक्तियों के उदाहरण भरे पड़े हैं जिन्होंने ज्ञान के द्वारा मुक्ति की कामना त्याग कर कृष्ण के चरणों की शरण ग्रहण की। नैमिषारण्य में शौनक आदि ब्राह्मण इसके उदाहरण हैं। (ये वही ब्राह्मण हैं जिन्हें सूत गोस्वामी ने *श्रीमद्‌भागवत* कथा सुनाई थी जैसा कि लेखक के *श्रीमद्‌भागवत* के पहले

स्कन्ध (भाग १, अध्याय १) में वर्णित है)। विद्वान् उन्हें पूर्ण ज्ञानयुक्त भक्त मानते हैं। *हरिभक्ति-सुधोदय* में एक कथन है जिसमें शौनक ऋषि आदि इन ब्राह्मणों ने सूत गोस्वामी से कहा "हे महात्मा! यह कितने आश्चर्य की बात है कि हम मनुष्य के रूप में भौतिक दोषों से इतने दूषित हैं फिर भी केवल भगवान् के विषय में वार्तालाप करने से हम धीरे-धीरे अपनी मुक्तिकामना से विमुख होते जा रहे हैं।"

पद्यावली में एक भक्त कहता है, "जो लोग आत्म-साक्षात्कार के लिए ज्ञान में आसक्त हैं, जिन्होंने यह तय कर लिया है कि परम सत्य ध्यानातीत है और इस प्रकार जो सतोगुण को प्राप्त हैं, उन्हें अपने-अपने कार्य शान्तिपूर्वक करने दें। किन्तु जहाँ तक हमारी बात है, हम तो एकमात्र उन भगवान् पर आसक्त हैं जो स्वभाव से अत्यन्त मनोहारी हैं, जिनका रंग श्यामल बादल सा है, जो पीताम्बरधारी हैं और जिनके कमल जैसे सुन्दर नेत्र हैं। हम तो केवल उनका ही ध्यान करना चाहते हैं।"

जो लोग अपने आत्म-साक्षात्कार के प्रारम्भ से ही भक्ति के प्रति आसक्त होते हैं वे *सेवानिष्ठ* कहलाते हैं। *सेवानिष्ठ* का अर्थ है "भक्ति में ही आसक्त"। ऐसे भक्तों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं—शिवजी, इन्द्र, बहुलाश्व, इक्ष्वाकु, श्रुतदेव तथा पुण्डरीक। एक भक्त कहता है, "हे नाथ! आपके दिव्य गुण आत्मारामों को भी आकृष्ट करने वाले हैं और उन्हें भक्तों की सभा तक ले जाते हैं जहाँ आपकी महिमाओं का निरन्तर गायन होता रहता है। यहाँ तक कि एकान्तप्रिय ऋषि-मुनि भी आपके यश के गीतों से आकृष्ट हो जाते हैं। आपके समस्त दिव्य गुणों को देख कर मैं भी आकृष्ट हो चुका हूँ और मैंने अपना जीवन आपकी प्रेमा-भक्ति में अर्पित करने का निश्चय कर लिया है।"

नित्य पार्षद

द्वारकापुरी में निम्नलिखित भक्तों को कृष्ण का अन्तरंग पार्षद माना जाता है—उद्धव, दारुक, सात्यकी, श्रुतदेव, शत्रुजित, नन्द, उपनन्द तथा भद्र। ये सारे महापुरुष भगवान् के साथ उनके सचिवों की तरह रहते हैं, किन्तु फिर भी वे कभी-कभी उनकी निजी सेवा भी करते हैं। कुरुवंशियों में भीष्म, महाराज परीक्षित तथा विदुर को भी कृष्ण का अन्तरंग पार्षद माना जाता है। कहा गया है, "कृष्ण के सारे पार्षद कान्तिमय शरीर वाले हैं और उनके नेत्र कमल के फूलों जैसे हैं। वे देवताओं की शक्ति को पराजित करने में सक्षम हैं और उनका विशिष्ट लक्षण यह है कि वे सदैव बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत रहते हैं।"

जब कृष्ण राजधानी इन्द्रप्रस्थ में थे तो किसी ने उनसे कहा, "हे प्रभु! उद्धव आदि आपके निजी पार्षद द्वारका के प्रवेशद्वार पर खड़े रहकर आपके आदेश पालन हेतु प्रतीक्षा करते रहते हैं। वे सदैव अश्रुपूरित दिखते हैं और सेवा के उत्साह में वे शिवजी द्वारा उत्पन्न प्रलयाग्नि से भी भयभीत नहीं होते। वे आपके चरणकमलों पर पूर्णतया शरणागत हैं।"

भगवान् कृष्ण के अनेक अन्तरंग पार्षदों में उद्धव सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—उनका शरीर यमुना नदी के रंग जैसा श्यामल और उसी तरह शीतल है। वे भगवान् कृष्ण द्वारा पहले पहनी गई पुष्प-मालाओं से सदैव सज्जित रहते हैं और सदैव पीत रेशमी वस्त्र धारण करते हैं। उनकी दोनों बाँहें दरवाजे की अर्गला के समान हैं। उनकी आँखें कमल के फूलों जैसी हैं और वे समस्त पार्षदों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भक्त हैं। अतएव हम उद्धव के चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं।"

उद्धव ने श्रीकृष्ण के दिव्य गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है, "हमारे स्वामी एवं आराध्य देव, शिव तथा ब्रह्मा के तथा सारे ब्रह्माण्ड के भी नियन्ता भगवान् कृष्ण अपने नाना उग्रसेन के आदेशों को मानते हैं। वे करोड़ों ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं तो भी उन्होंने समुद्र से थोड़ी भूमि के लिए याचना की थी। यद्यपि वे ज्ञान के सागर हैं तो भी यदाकदा मुझसे मन्त्रणा करते हैं। वे इतने महान् एवं वदान्य हैं फिर भी सामान्य पुरुष की भाँति विभिन्न कार्यों में लगे रहते हैं।"

भगवान् के अनुग

जो लोग भगवान् की निजी सेवा में निरन्तर संलग्न रहते हैं वे *अनुग* कहलाते हैं। ऐसे अनुगों के उदाहरण हैं—सुचन्द्र, मण्डन, स्तम्ब तथा सुतम्ब। ये सारे के सारे द्वारकापुरी के निवासी हैं और अन्य पार्षदों की तरह ही वस्त्र तथा आभूषण धारण किये रहते हैं। अनुगों को जो विशिष्ट सेवा-कार्य दिये गये हैं वे विविध है। मण्डन सदैव कृष्ण के सिर के ऊपर छाता ताने रहता है, सुचन्द्र श्वेत चामर हिलाता है और सुतम्ब सदैव पान देता है। ये सभी महान् भक्त हैं और सदैव कृष्ण की दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगे रहते हैं।

जिस प्रकार द्वारका में अनेक अनुग हैं उसी तरह वृन्दावन में भी अनेक अनुग हैं। वृन्दावन के अनुगों के नाम हैं—रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, रसाल, सुविलास, प्रेमकन्द, मरन्दक, आनन्द, चन्द्रहास, पयोद, बकुल, रसद तथा शारद।

वृन्दावन के अनुगों के शारीरिक स्वरूपों का वर्णन इस प्रकार है, "मैं महाराज नन्द के पुत्र के नित्य पार्षदों को सादर प्रणाम करता हूँ। वे सदैव वृन्दावन में रहते हैं। उनके शरीर मोती की मालाओं से तथा सोने के कंकणों तथा बिजावटों से सुशोभित रहते हैं। उनका रंग काले भौरों तथा सुनहरे चाँद जैसा है और वे अपने स्वरूपों के अनुसार उपयुक्त वस्त्र धारण करते हैं। उनके निर्धारित कार्यों को माता यशोदा के उस कथन से जाना जा सकता है जिसमें वे कहती हैं, "बकुल! तुम कृष्ण का पीताम्बर धो डालो। वारिक! तुम नहाने के जल में अगुरु सुगन्ध डाल कर उसे सुगन्धित कर दो तथा हे रसाल! तुम पान तैयार कर दो। तुम देख रहे हो न कि कृष्ण आ रहे हैं। धूल उड़ रही है और गौवें स्पष्ट दिख रही हैं।"

अनुगों में रक्तक सर्वप्रमुख हैं। उसके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है "वह पीत वस्त्र पहनता है और उसके शरीर का रंग नई उगी दूर्वा के समान है। वह गाने में निपुण है और महाराज नन्द के पुत्र की सेवा में सदा लगा रहता है। हम सबों को चाहिए कि कृष्ण की प्रेमा-भक्ति करने के लिए रक्तक के अनुगामी बनें।" श्रीकृष्ण के प्रति रक्तक की अनुरक्ति का पता रसद से कहे गये उसके इस कथन से चल सकता है, "जरा सुनो तो! मुझे इस तरह रखो कि मैं भगवान् कृष्ण की जो अब गोवर्धन गिरिधारी के रूप में प्रसिद्ध हो गए हैं सेवा में सदैव लगा रहूँ।"

भगवान् कृष्ण की निजी सेवा में लगे भक्तगण सदैव सतर्क रहते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि कृष्ण का निजी सेवक बनना आसान काम नहीं है। जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में रत चींटियों का भी सम्मान करता है वह शाश्वत सुखी बनता है, अतएव उसके विषय में क्या कहा जाय जो कृष्ण की साक्षात् सेवा कर रहा हो? रक्तक ने एक बार अपने मन में कहा, "मेरे लिए अकेले कृष्ण ही नहीं, अपितु कृष्ण की सखी-गोपियाँ भी समान रूप से आराध्य तथा सेव्य हैं। और केवल गोपियाँ ही क्यों? जो कोई भी भगवान् की सेवा में रत है, मेरे लिए वह भी आराध्य और सेव्य है। मैं जानता हूँ कि मुझे सावधान रहना चाहिए कि मुझे इसका अतिशय गर्व न हो जाय कि मैं ही भगवान् का अनुग और भक्त हूँ।" इस कथन से यह समझा जा सकता है कि भगवान् की भक्ति में लगे हुए शुद्ध भक्त सदैव सतर्क रहते हैं और उन्हें अपनी सेवा का अतिशय गर्व नहीं होता।

कृष्ण के प्रत्यक्ष सेवक की यह मनोवृत्ति *धूर्य* कहलाती है। भगवान् के प्रत्यक्ष पार्षदों का कुशल विश्लेषण करते हुए श्रील रूप गोस्वामी ने इन्हें तीन श्रेणियों में रखा

है—धूर्य, धीर तथा वीर। रक्तक को या परम प्रिय गोपियों की सेवा में लगे रहने वालों को *धूर्य* की श्रेणी में रखा जाता है।

सत्यभामा की धाय का पुत्र कृष्ण का एक *धीर* पार्षद है। सत्यभामा द्वारका में कृष्ण की एक महिषी है और जब उनका विवाह कृष्ण के साथ हुआ तो उनकी धाय के पुत्र को उनके साथ जाने दिया गया, क्योंकि वे दोनों बचपन से बहन तथा भाई की तरह रह रहे थे। अतएव धाय का यह पुत्र कृष्ण के साले के समान उनके साथ रहता था और साले के नाते वह कभी-कभी कृष्ण से हास-परिहास भी कर लेता था। उसने कृष्ण से एक बार इस प्रकार कहा, "हे कृष्ण! मैंने आपकी विवाहिता लक्ष्मी जी से कभी कृपा की कामना नहीं की तो भी मैं इतना भाग्यशाली हूँ कि मुझे आपके परिवार का सदस्य, यानी सत्यभामा का भाई माना जाता है।"

एक *वीर* पार्षद ने अपना अभिमान इस प्रकार व्यक्त किया, "भले ही बलराम जी प्रलम्बासुर के घोर शत्रु हों, किन्तु मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। न ही मुझे प्रद्युम्न से कुछ लेना-देना है, क्योंकि वह निरा बालक है। अतएव मैं किसी से कोई उम्मीद नहीं रखता। मैं तो कृष्ण की अनुकूल चितवन की आशा करता हूँ और इसलिए मैं कृष्ण की प्रिया सत्यभामा से भी नहीं डरता।"

श्रीमद्भागवत में (४.२०.२८) राजा पृथु ने भगवान् को यह कह कर सम्बोधित किया है, "हे प्रभु! हो सकता है लक्ष्मी जी मेरे कार्य से असन्तुष्ट हो जायँ या उनको समझने में मुझे ही कोई भ्रान्ति हो जाय, किन्तु मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है, क्योंकि मुझे आप पर पूरा भरोसा है। आप अपने सेवकों पर अकारण कृपालु रहते हैं और उनकी छोटी से छोटी सेवा को भी बहुत बड़ा कार्य समझते हैं। अतएव मुझे विश्वास है कि आप मेरी अकिंचन सेवा स्वीकार करेंगे, भले ही वह नगण्य क्यों न हो। हे प्रभु! आप आत्मनिर्भर हैं। आप किसी अन्य की सहायता के बिना भी जो चाहें कर सकते हैं। अतएव लक्ष्मी जी भले ही मुझ पर प्रसन्न न रहें तो भी मैं जानता हूँ कि आप मेरी सेवा सदैव स्वीकार करेंगे।"

भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे भक्त तीन प्रकार के हो सकते हैं—शरणागत, भक्ति-ज्ञान में प्रगत तथा दिव्य प्रेमाभक्ति में पूर्णतया तल्लीन। ऐसे भक्तों को क्रमशः नवदीक्षित, पूर्ण तथा नित्यसिद्ध कहा जाता है।

अध्याय सैंतीस

कृष्ण की सेवा के उद्दीपन

भक्त को भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति में संलग्न रहने के लिए कृष्ण की अहैतुकी कृपा, उनके चरणों की धूल, उनका *प्रसाद* तथा उनके भक्तों की संगति—ये कतिपय उद्दीपन हैं।

कृष्ण ने भीष्म पितामह के प्रयाण के समय उपस्थित होकर अपनी अहैतुकी कृपा का परिचय दिया। कुरुक्षेत्र के युद्ध-काल में अर्जुन के पितामह भीष्म देव इस मर्त्यलोक से प्रस्थान करने के पूर्व शरशय्या पर लेटे थे। जब भगवान् कृष्ण, महाराज युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव भीष्मदेव के निकट गये तो उन्होंने कृष्ण के प्रति अतीव कृतज्ञता व्यक्त की और ब्राह्मण सेनापति कृपाचार्य से इस प्रकार कहा, ''हे कृपाचार्य! भगवान् कृष्ण की अद्‌भुत अहैतुकी कृपा देख रहे हो न! मैं सबसे अभागा हूँ। मुझ में कोई योग्यता नहीं है। मैं कृष्ण के अन्तरंग सखा अर्जुन का विरोध कर रहा था—मैंने उसे *मार* डालने तक का प्रयत्न किया! मुझ में अनेक दुर्गुण हैं तो भी भगवान् कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे मुझे जीवन की अन्तिम घड़ी में देखने आये हैं। वे सभी मुनियों द्वारा वंदनीय हैं, फिर भी वे इतने दयालु हैं कि मुझ जैसे अधम व्यक्ति को देखने आये हुए हैं।''

कभी-कभी कृष्ण की वंशीध्वनि, उनका शृंग-वादन, उनकी मुसकान, उनके धरती पर चरणचिह्न, उनके शरीर की दिव्य सुगंधि तथा आकाश में नये बादल का उमड़ना भी कृष्ण की रति के उद्दीपन बनते हैं।

विदग्ध-माधव में यह कथन है, ''जब कृष्ण वंशी बजा रहे थे तो बलदेव ने उत्सुकतापूर्वक घोषणा कर दी 'जरा देखो तो, किस तरह स्वर्ग का राजा इन्द्र कृष्ण की बाँसुरी की दिव्य ध्वनि सुन कर अपने स्वर्गलोक में क्रन्दन कर रहा है! और भूमि पर उसके आँसुओं के गिरने से वृन्दावन देवताओं के लिए स्वर्गिक आवास जैसा बना दिख रहा है।''

कृष्ण की रति के, जिसे *अनुभाव* कहते हैं, लक्षण इस प्रकार हैं—मनुष्य का एकमात्र भगवान् की सेवा में लगना, भगवान् के आदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करने

के लिए चौकन्ना रहना, भगवान् की पूर्ण प्रेमा-भक्ति में रहकर अविचल तथा ईर्ष्यारहित बनना तथा भगवद्भक्तों से जो उनकी सच्ची सेवा में लगे हैं, मैत्री स्थापित करना। ये सारे लक्षण *अनुभाव* कहलाते हैं।

अनुभाव का पहला लक्षण कृष्ण के सेवक दारुक द्वारा चरितार्थ होता है जो कृष्ण पर चामर झलता था। जब वह इस तरह सेवा करता था तो अनुभाव से भरा रहता था और इस के लक्षण उस के शरीर में प्रकट हो जाते थे। किन्तु वह अपनी सेवा के प्रति इतना निष्ठावान था कि उसने इन सारे लक्षणों को रोक लिया, क्योंकि वह इन्हें अपने कार्य में बाधक समझता था। उसने इन लक्षणों की अधिक परवाह नहीं की यद्यपि ये स्वतः विकसित हो गये थे।

श्रीमद्भागवत में (१०.८६.३८) एक प्रसंग आता है जिसमें उत्तरी भारत के मिथिला देश के ब्राह्मण श्रुतदेव का वर्णन है। वह कृष्ण को देखते ही प्रसन्नता से इतना भावविह्वल हो गया कि वह भगवान् के चरणकमलों को प्रणाम करने के बाद अपनी दोनों भुजाएँ सिर के ऊपर उठाकर नाचने लगा।

एक बार कृष्ण के एक भक्त ने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया, "हे प्रभु! यद्यपि आप व्यावसायिक नर्तक नहीं हैं, किन्तु आपके नृत्य को देखकर हम अतीव चकित हैं जिससे हम यह समझ सकते हैं कि आप समस्त नृत्य कला में पारंगत हैं। निस्सन्देह, आपने यह नृत्यकला रति (प्रेम की देवी) से सीखी होगी।" जब भक्त प्रेम भाव से भर कर नाचता है तो *सात्त्विक* भाव प्रकट होते हैं। *सात्त्विक* का अर्थ है वे जो दिव्य स्तर पर प्रकट होते हैं। वे भौतिक भावना के लक्षण नहीं होते; वे साक्षात् आत्मा से प्रकट होते हैं।

श्रीमद्भागवत में (१०.८५.३८) शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से बतलाते हैं कि बलि महाराज ने वामनदेव के चरणकमलों पर सर्वस्व अर्पित करने के बाद उनके चरणकमलों को तुरन्त पकड़ लिया और उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। आनन्दमग्न होने से उनमें सारे अनुभाव प्रकट हो आये। उनकी आँखों में आँसू भर आये और उनकी वाणी रुद्ध हो गई।

अनुभावों की ऐसी अभिव्यक्ति के समय अनेक गौण लक्षण भी प्रकट होते हैं यथा हर्ष, म्लानता, मौन, निराशा, विषण्णता, सम्मान, भावुकता, स्मृति, शंका, विश्वास, उत्सुकता, उदासीनता, चपलता, धृष्टता, लज्जा, जड़ता, मोह, उन्माद, जुगुप्सा, बोध, स्वप्न, व्याधि तथा मृत्यु के लक्षण। जब भक्त कृष्ण से मिलता है तो हर्ष, गर्व तथा

धैर्य के लक्षण प्रकट होते हैं और जब वह कृष्ण का वियोग अनुभव करता है तो जुगुप्सा, व्याधि तथा मृत्यु के चिह्न प्रमुख हो उठते हैं।

श्रीमद्भागवत में (१.११.५) कहा गया है कि जब कृष्णजी कुरुक्षेत्र युद्ध से लौटकर अपने घर द्वारका आये तो सारे द्वारकावासी उनसे इस तरह बातें करने लगे जिस प्रकार प्रवास से लौटे पिता से उसके पुत्र प्रेम भरी बातें करते हैं। यह हर्ष का उदाहरण है।

जब मिथिलानरेश बहुलाश्व ने कृष्ण को अपने महल में देखा तो उसने उनके समक्ष कम से कम सौ बार दण्डवत करके उनका सम्मान करने का निश्चय किया, किन्तु वह प्रेम भाव से इतना विह्वल हो गया कि एक बार प्रणाम करने के बाद उसे अपनी सुधि ही नहीं रही और वह दुबारा उठ नहीं सका।

स्कन्द पुराण में एक भक्त कृष्ण से कहता है "हे प्रभु! जिस प्रकार सूर्य अपनी तपती गर्मी से धरती से सारे पानी को उड़ा देता है उसी तरह आपके वियोग के कारण मेरी मानसिक दशा ने मेरे मुख तथा शरीर की कान्ति हर ली है।" यह रति में म्लानता का उदाहरण है।

निराशा की अभिव्यक्ति स्वर्ग के राजा इन्द्र के उस कथन में है जो उसने सूर्य को देख कर कहा था, "हे सूर्यदेव! आप का तेज अत्यन्त यशस्वी है, क्योंकि यह यदुकुल के स्वामी भगवान् कृष्ण के चरणकमलों तक पहुँचता है। किन्तु मेरे हजारों नेत्र होने पर भी वे सब व्यर्थ हैं, क्योंकि वे एक क्षण भर भी कृष्ण के चरणकमलों को नहीं देख पाते।"

भगवान् के प्रति सम्मान क्रमशः बढ़कर रति में, फिर स्नेह में और तब अनुरक्ति में परिणत हो जाता है। *श्रीमद्भागवत* में (१०.३८.६) अक्रूर कहते हैं, "चूँकि आज मैं कृष्ण का दर्शन करने जा रहा हूँ, अतएव अशुभ के सारे लक्षण पहले ही नष्ट हो चुके हैं। अब मेरा जीवन सफल हुआ है, क्योंकि मैं भगवान् के चरणकमलों में सादर सम्मान व्यक्त कर सकूँगा।"

एक अन्य भक्त ने आदरयुक्त स्नेह में एक बार कहा, "मेरे जीवन का वह धन्य दिन कब होगा जब मैं यमुना तट पर जाकर कृष्ण को ग्वाल-बाल के रूप में खेलते हुए देख सकूँगा?"

जब इस भाव में कमी नहीं आती और यह समस्त प्रकार के संशय से मुक्त रहता है तो भक्त ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जिसे कृष्ण के लिए स्थायी प्रेम कहा जाता

है। इस अवस्था में भक्त द्वारा अप्रसन्नता की सारी अभिव्यक्तियाँ *अनुभाव* कहलाती हैं।

बलि महाराज ने जिस आदरयुक्त अनुभाव का अनुभव किया वह इस प्रकार व्यक्त हुआ, "हे प्रभु! आपने दंड देने के साथ ही साथ मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा का प्रदर्शन किया है। मेरा निर्णय है कि जब मैंने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है तो मैं जीवन की किसी भी दशा में विचलित नहीं किया जाऊँगा। चाहे आप मुझे सारी योग-सिद्धियों को भोगने का अवसर दें, चाहे मुझे नारकीय जीवन की अधम स्थिति में डाल दें, मैं कभी विचलित नहीं होऊँगा।"

कृष्ण ने स्वयं बलि महाराज को देखने के बाद उद्धव से कहा था, "हे मित्र! मैं विरोचन पुत्र बलि महाराज के यशस्वी गुणों का वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ? यद्यपि सुरों के राजा को इस विरोचन पुत्र ने शाप दिया था और मैंने वामन अवतार धारण करके इसके सारे साम्राज्य को लेकर इसे ठगा था और तिस पर भी अपना वचन पूरा न करने के लिए उसकी आलोचना की थी, किन्तु अभी-अभी मैंने उसके साम्राज्य में जाकर उसे देखा है और उसने बड़े ही भावपूर्वक मेरे प्रति अपना *प्रेम* व्यक्त किया है।"*

जब इस तरह की प्रेम भावना तीव्र हो उठती है तो यह स्नेह कहलाती है। स्नेह की इस अवस्था में क्षण भर के लिए भी कृष्ण का वियोग सहन नहीं हो पाता।

एक भक्त ने कृष्ण के सेवक दारुक से कहा, "हे दारुक! जब तुम कृष्ण के वियोग के कारण काष्ठवत् हो जाते हो तो यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं होती। जब भी कोई भक्त कृष्ण को देखता है तो उसकी आँखें अश्रुओं से भर जाती हैं और विरह में तुम जैसा कोई भी भक्त कठपुतली के समान स्तम्भित खड़ा रह जाता है। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।"

उद्धव के प्रेम के लक्षणों के विषय में यह कथन मिलता है कि जब उन्होंने कृष्ण को देखा तो उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली जो अभिनन्दन हेतु कृष्ण

*बलि असुरों का राजा था, जिसने देवताओं के विरुद्ध युद्ध करके लगभग सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया था। जब देवताओं ने भगवान् से प्रार्थना की तो वे एक ब्राह्मण के वेश में वामनदेव के रूप में अवतरित हुए और उन्होंने बलि से तीन पग जमीन माँगी। बलि राजी हो गया और उन्होंने दो पग में ही सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया और उससे पूछा कि मैं तीसरा पग कहाँ रखूँ? तो बलि ने अपना सिर उनके चरणों के नीचे रख दिया और इस प्रकार वह *महाजन* एक महान् भक्त बन गया।

रूपी सागर की ओर उसी तरह बह चली जिस प्रकार पत्नी अपने पति का अभिनन्दन करती है। जब उनका शरीर रोमांचित हो उठा तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई कदम्ब का फूल हो। स्तुति करते समय वे अन्य भक्तों से सर्वथा भिन्न लग रहे थे।

जब यह स्नेह प्रत्यक्ष सुख तथा दुख द्वारा लक्षित होता है तो यह आकर्षण (राग) कहलाता है। ऐसे प्रेममय आकर्षण की दशा में मनुष्य समस्त प्रकार की असुविधाओं को मौन भाव से सह लेता है। यहाँ तक कि मृत्यु का खतरा होने पर भी ऐसा भक्त भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति से विलग नहीं होता। इस प्रेम का अनूठा उदाहरण राजा परीक्षित द्वारा अपनी मृत्यु के निकट आने पर भी प्रदर्शित किया गया। यद्यपि वे अपने सम्पूर्ण साम्राज्य से जो सारे जगत् में फैला हुआ था, वंचित थे और अपने जीवन के शेष सात दिनों में उन्होंने जल की एक बूँद भी ग्रहण नहीं की थी, क्योंकि वे शुकदेव गोस्वामी से भगवान् की दिव्य लीलाओं का श्रवण कर रहे थे, किन्तु उन्हें तनिक भी दुख नहीं हुआ। इसके विपरीत, वे शुकदेव गोस्वामी की संगति में प्रत्यक्ष दिव्य-प्रेम का अनुभव कर रहे थे।

एक भक्त ने बड़े विश्वास के साथ यह मत व्यक्त किया है: "यदि मुझे कृष्ण की दया की एक बूँद भी मिल जाय तो मैं स्वयं को पूरी तरह चिन्तामुक्त अनुभव करूँ, भले ही मैं अग्नि या समुद्र के मध्य में क्यों न रहूँ। किन्तु यदि मैं उनकी अहैतुकी कृपा से वंचित होऊँ तो यदि मैं द्वारका का राजा भी बन जाऊँ तो मेरे लिए यह चुभने वाला कंटक ही बन जायेगा।"

महाराज परीक्षित तथा उद्धव जैसे भक्त इसी स्नेह के बल पर राग में स्थित हैं। इस स्नेह दशा में मैत्री भावना प्रकट होने लगती है। जब उद्धव सारे भौतिक कल्मष से रहित हो गये तो उन्हें भगवान् के दर्शन हुए, उनका गला रुँध आया और वे बोल नहीं सके। वे अपनी भौहों की गति से ही भगवान् का आलिंगन कर रहे थे। ऐसे प्रेम को विद्वानों ने दो वर्गों में बाँटा है—योग तथा अयोग। यदि भक्त भगवान् के प्रत्यक्ष संसर्ग में नहीं रहता तो इसे *अयोग* कहते हैं। प्रेम की इस दशा में मनुष्य भगवान् के चरणकमलों में मन से सदा स्थिर रहता है। इस अवस्था में भक्त भगवान् के दिव्य गुणों के बारे में जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहता है। ऐसे भक्त का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करना।

नृसिंह-पुराण में राजा इक्ष्वाकु के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे प्रेम की इस दशा का चित्र उभर आता है। कृष्ण के लिए अतीव प्रेम के कारण, राजा इक्ष्वाकु

श्याम मेघ, काले हिरण की काली आँखों तथा कमल फूल के प्रति जिनसे भगवान् के नेत्रों की नित्य तुलना की जाती है, अत्यधिक अनुरक्त हो गए। *श्रीमद्भागवत* में (१०.३८.१०) अक्रूर सोचते हैं, "चूँकि भगवान् संसार के भार को कम करने के लिए अब अवतरित हुए हैं और सबों के समक्ष अपने साकार स्वरूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, अतएव जब हम उन्हें अपने समक्ष देखते हैं तो क्या यह हमारी आँखों की परम सिद्धि नहीं है?" दूसरे शब्दों में, अक्रूर ने यह अनुभव किया कि आँखों की कृतार्थता भगवान् कृष्ण के दर्शन कर सकने में है। अतएव जब भगवान् कृष्ण इस धरा पर साक्षात् दृष्टिगोचर हो रहे थे तो जिस किसी ने उनका दर्शन किया उसकी दृष्टि निश्चित रूप से सफल हो गई।

बिल्वमंगल ठाकुर कृत *कृष्ण-कर्णामृत* में उत्सुकता अनुभाव का यह कथन मिलता है, "हे कृष्ण! हे दीनबन्धु! हे कृपासिन्धु! मैं इन अप्रशंसनीय दिनों को आपको देखे बिना कैसे काटूँ?" ऐसी ही भावना कृष्ण को पत्र लिखते समय उद्धव ने व्यक्त की थी, "हे व्रजराज! आप आँखों के लिए अमृत रूपी दृष्टि हैं और आपके चरणकमलों तथा आपके शरीर के तेज को देखे बिना मेरा मन सदैव खिन्न रहता है। मुझे किसी भी तरह कोई शान्ति नहीं मिलती। यही नहीं, मुझे हर क्षण का विरह अनेकानेक वर्षों सा प्रतीत होता है।"

कृष्ण-कर्णामृत में यह भी कहा गया है, "हे प्रभु! आप करुणा के सागर हैं। मैं सिर पर हाथ रख कर अत्यन्त विनय तथा दीनता के साथ आप को प्रणाम करता हूँ। हे भगवान्! मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। क्या आप मेरे ऊपर अपना थोड़ा सा कटाक्ष-रूपी जल छिड़क सकेंगे? यही मेरे लिए परम सन्तोष होगा।"

कृष्ण के एक भक्त ने कहा, "जब शशिशेखर (शिवजी) भी आपका दर्शन नहीं कर पाते तो मुझ जैसे सामान्य कीट से भी निम्न के लिए अवसर कहाँ मिलने लगा? मैंने तो दुष्कर्म ही किये हैं। मै जानता हूँ कि मैं आपकी प्रार्थना करने के योग्य नहीं, किन्तु क्योंकि आप दीनबन्धु कहे जाते हैं, अतएव मेरी यही विनती है कि आप अपनी दिव्य चितवन की किरणों से मुझे शुद्ध कर दें। यदि मैं आपकी कृपादृष्टि से स्नात हो जाऊँ तो मैं बच सकता हूँ। अतएव हे प्रभु! मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि मुझ पर कृपा दृष्टि करें।"

अध्याय अड़तीस

उदासीनता और वियोग

भक्तप्रवर उद्धव ने एक बार कृष्ण को पत्र लिखा, "हे कृष्ण! मैंने अभी-अभी जीवन-लक्ष्य विषयक सभी दर्शन की पुस्तकें तथा वैदिक श्लोक पढ़ कर समाप्त किये हैं, अतएव अध्ययन विषयक मुझे कुछ ख्याति मिली है। इतनी ख्याति मिलने पर भी मेरे ज्ञान को धिक्कार है, क्योंकि मैंने वैदिक ज्ञान के तेज का आनन्द तो उठाया, किन्तु मैं आपके चरण-नखों से निर्गत तेज को सराह ही नहीं पाया। अतएव जितनी ही जल्दी मेरा गर्व तथा मेरा वैदिक ज्ञान समाप्त हो जाय उतना ही अच्छा होगा" यह उदासीनता का उदाहरण है।

एक अन्य भक्त ने अत्यन्त चिन्तित होकर अपनी बात इस तरह कही "मेरा मन इतना अस्थिर है कि मैं इसे आपके चरणकमलों में एकाग्र नहीं कर सकता। अपनी इस अक्षमता को देखकर मैं लज्जित हूँ और इस अक्षमता की पीड़ा के मारे रात भर सो नहीं पाता।"

कृष्ण-कर्णामृत में बिल्वमंगल ठाकुर ने अपनी अशांति इस प्रकार व्यक्त की है—"हे प्रभु! आपके बचपन का नटखटापन तीनों लोकों में सब से अधिक अद्भुत है। आप स्वयं जानते हैं कि यह नटखटापन क्या है; अतएव आप मेरे अस्थिर मन को सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। यह आपको तथा मुझको ज्ञात है। अतएव मैं यही जानने को इच्छुक रहता हूँ कि आपके चरणकमलों में अपने मन को किस तरह एकाग्र करूँ।"

एक अन्य भक्त अपने को उद्धत बताते हुए कहता है "हे प्रभु! अपनी नीचता पर विचार किये बिना मैं आपके समक्ष स्वीकार करता हूँ कि मेरे नेत्र काले भौरों के समान आपके चरणकमलों पर मँडराना चाहते हैं।"

श्रीमद्भागवत में (७.४.३७) महर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर को प्रह्लाद महाराज के बारे में बताते हैं जो अपने जीवन के प्रारम्भ से ही भक्त थे। प्रह्लाद की सहज भक्ति का प्रमाण यह है कि जब वे छोटे बच्चे थे तो भी अपने साथियों के साथ खेलते नहीं

थे वरन् भगवान् की महिमा का उपदेश करने को सदा उत्सुक रहते थे। वे उनके खेलकूद में भाग न लेकर निष्क्रिय बालक बने रहते, क्योंकि वे सदैव समाधि में रहकर कृष्ण का ध्यान करते थे। फलतः उन्हें बाह्य जगत का स्पर्श भी नहीं हो सकता था।

निम्नलिखित कथन एक ब्राह्मण भक्त के विषय में है—''यह ब्राह्मण सभी कर्मों में अत्यन्त दक्ष है, किन्तु समझ में नहीं आ रहा कि यह अविचल नेत्रों से बिना आँखें चलाये ऊपर क्यों देख रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका शरीर गुड़िया की तरह निश्चल हो गया है। मेरा अनुमान है कि पटु वंशीवादक श्रीकृष्ण के दिव्य सौन्दर्य से मोहित होने से उसे यह दशा प्राप्त हुई है और उन पर अनुरक्त होने के कारण उनके श्यामल शरीर का स्मरण करके यह काले बादलों को ताक रहा है।'' यह प्रेम के कारण जड़ता का उदाहरण है।

श्रीमद्भागवत में (७.४.४०) प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि अपने बचपन में भी जब वे भगवान् के यश का उच्च स्वर से गान करते तो वे निर्लज्ज उन्मत्त पुरुष की भाँति नाचा करते थे। और कभी-कभी भगवान् की लीलाओं के चिन्तन में तल्लीन होकर उन लीलाओं का अनुकरण करने लगते थे। यह भक्त द्वारा उन्मत्त की भाँति आचरण करने का उदाहरण है। इसी प्रकार यह कहा जाता है कि महर्षि नारद जी कृष्ण के प्रेम में इतने विभोर रहते थे कि वे कभी-कभी नंगा नाचने लगते थे और उनका सारा शरीर स्तंभित हो जाता था। कभी वे अट्टहास करते तो कभी प्रलाप करने लगते, कभी मौन हो जाते तो कभी रुग्ण दिखने लगते, यद्यपि उनको कोई रोग नहीं था। यह भक्तिभाव में उन्मत्त होने का एक अन्य उदाहरण है।

हरिभक्ति-सुधोदय में कहा गया है कि जब प्रह्लाद महाराज ने अपने आपको भगवान् तक पहुँचने के अयोग्य समझा तो वे दुःखी होकर दुख के सागर में निमग्न हो गये। फलतः वे आँसू बहाते और अचेत की भाँति फर्श पर लेट जाते।

एक महान भक्त के शिष्यगण एक बार आपस में इस प्रकार बातें कर रहे थे ''हे गुरुभाइयो! हमारे गुरु ने भगवान् के चरणकमलों का दर्शन करने के पश्चात् अपने आपको मानो सन्ताप की अग्नि में झुलस दिया है और इस अग्नि से उनके शरीर का जल लगभग सूख गया है। अतः चलो उनके कानों में भगवन्नाम रूपी अमृत उढ़ेलें जिससे उनका प्राण रूपी हंस पुनः जीवित हो सके।''

जब कृष्ण बलि के पुत्र बाण से युद्ध करने और उसके हाथ काटने शोणितपुर गये तो उद्धव श्रीकृष्ण के वियोग के कारण और उनके युद्ध के विषय में सोचकर लगभग पूरी तरह स्तंभित और अचेत हो गये।

जब भक्त पूर्णरूप से भगवत्प्रेम में तल्लीन रहता है तो उसमें भगवान् से वियोग होने की भावना के निम्नलिखित लक्षण प्रकट हो सकते हैं—ज्वर चढ़ना, शरीर का मुरझाना, निद्रा न आना, विरक्ति, जड़ता, रुग्णता, उन्माद, संज्ञाशून्यता (मूर्छा) तथा कभी- कभी मृत्यु।

जहाँ तक ज्वर चढ़ने की बात है, उद्धव ने एक बार नारद से कहा, ''हे महर्षि! यदि सूर्य का मित्र कमल हमें दुख दे, यदि बड़वानल हममें जलन उत्पन्न करे और असुर सखा इन्दीवर हमें तरह-तरह के कष्ट पहुँचाये तो हमें इसकी चिन्ता नहीं है, किन्तु सबसे कष्टदायक बात यह है कि ये सभी हमें कृष्ण का स्मरण कराते हैं और इसी से हमें अत्यधिक सन्ताप मिलता है।'' यह कृष्ण वियोग से जनित ज्वर (संताप) दशा है।

कुछ भक्त कृष्ण का दर्शन करने द्वारका गये तो उन्हें द्वार पर ही रोक दिया गया। तब वे बोले, ''हे कृष्ण! हे पाण्डव-सखा! जिस प्रकार हंस कुमुदिनियों के बीच जल में डुबकी लगाना पसन्द करता है और जल से विलग किये जाने पर मर जाता है उसी तरह हम भी आपके ही साथ रहना चाहते हैं। आपसे विलग होने से हमारे अंग सिकुड़ कर विवर्ण हो रहे हैं।''

बहुल के राजा को अपने महल में सुखपूर्वक रहते हुए भी कृष्ण के वियोग के कारण रातें लम्बी तथा दुखदायी लगने लगीं।

एक बार राजा युधिष्ठिर ने कहा, ''पार्थसारथी कृष्ण ही तीनों लोकों में मेरे एकमात्र संबंधी हैं। अतएव उनके चरणकमलों के वियोग के कारण मेरा मन अहर्निश पागल सा बना रहता है और मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ और कहाँ जाऊँ कि मेरा मन स्थिर हो।'' यह भी नींद न आने का उदाहरण है।

कृष्ण के कुछ गोपमित्रों ने कहा, ''हे मुरारि! जरा अपने अनुग रक्तक के बारे में तो सोचो। उसने मोरपंख क्या देखा, अब उसने अपनी आँखें बन्द कर ली हैं और चरती हुई गायों के प्रति सतर्क नहीं रहता है। उसने उन्हें दूर चरागाह में छोड़ दिया है और उन्हें हाँकने के लिए लाठी तक का प्रयोग नहीं किया है।'' यह कृष्ण के वियोग से जनित मानसिक असन्तुलन का उदाहरण है।

जब भगवान् कृष्ण राजा युधिष्ठिर की राजधानी गये हुए थे तो कृष्ण की विरहाग्नि से उद्धव इतने संतप्त हुए कि उनके दग्ध शरीर से पसीना छूट आया और आँखों से आँसू झड़ने लगे। इस तरह वे पूर्णतया स्तम्भित हो गये।

जब श्रीकृष्ण स्यमंतक मणि की खोज में द्वारका से चले गये और उन्हें लौटने में देरी हुई तो उद्धव इतने संतप्त हुए कि उनके शरीर में रोग के लक्षण प्रकट होने लगे। वस्तुतः कृष्ण-प्रेम की अतिशयता के कारण द्वारका के लोग उद्धव को पागल कहने लगे। सौभाग्यवश उस दिन उद्धव के पागलपन की प्रसिद्धि पूरी तरह सिद्ध हो गई, जब वे रैवतक पर्वत में घने श्याम बादलों को ध्यानपूर्वक देखने गये हुए थे। वे अपनी विक्षुब्ध दशा में इन बादलों से प्रार्थना करने लगे और उनके समक्ष नतमस्तक होकर उन्होंने परम हर्ष व्यक्त किया।

उद्धव ने कृष्ण को सूचित किया, "हे यदुकुल नायक! वृन्दावन में आपके सेवक आपका चिन्तन करने से रात भर सो नहीं पाते, अतएव इस समय वे यमुना के तट पर निश्चेष्ट-प्राय हुए लेटे हैं। ऐसा लगता है कि वे मृतप्राय हैं, क्योंकि उनकी साँस धीमी चल रही है।" यह कृष्ण के विरह से जन्य संज्ञाशून्यता का उदाहरण है।

कृष्ण को एक बार सूचित किया गया, "आप सभी वृन्दावनवासियों के जीवनाधार हैं। आपके वृन्दावन छोड़ने से आपके चरणकमलों के समस्त सेवक वहाँ कष्ट भोग रहे हैं। ऐसा लगता है कि आपके विरह की झुलसती धूप से कमलों से भरा सरोवर सूख गया है।" इस उदाहरण में वृन्दावनवासियों की उपमा कमलों से भरे सरोवर से दी गई है और कृष्ण के वियोग की उपमा झुलसती धूप से जिससे सरोवर अपने सारे कमलों सहित जल चुका है। और सरोवर के हंस, जिनकी उपमा वृन्दावनवासियों के प्राणों से दी गई है, अब वहाँ नहीं रहना चाह रहे। दूसरे शब्दों में, झुलसती धूप के कारण हंस सरोवर छोड़ कर जा रहे हैं। इस रूपक का प्रयोग कृष्ण से वियुक्त भक्तों की दशा का वर्णन करने के लिए किया जाता है।

अध्याय उनतालीस

कृष्ण मिलन की विधियाँ

जब कृष्ण तथा उनके भक्त मिलते हैं तो इस मिलन को पारिभाषिक भाषा में *योग* कहा जाता है। कृष्ण तथा उनके भक्तों के ऐसे योग को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—सिद्धि, तुष्टि तथा स्थिति।

जब कोई भक्त उत्कंठापूर्वक कृष्ण से मिलता है तो इस मिलन को सिद्धि कहते हैं। *कृष्ण-कर्णामृत* में बिल्वमंगल ठाकुर ने वर्णन किया है कि किस प्रकार अपने सिर पर मोर पंख रखे, वक्षस्थल पर मरकत मणि धारण किये, मोहिनी मुस्कान, चंचल नेत्र और अत्यन्त कोमल शरीर वाले कृष्ण अपने भक्त से मिलते हैं।

श्रीमद्भागवत में (१०.३८.३४) शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से कहते हैं, "हे राजन्! ज्योंही सारथी अक्रूर ने कृष्ण तथा उनके ज्येष्ठ भ्राता बलदेव को वृन्दावन में देखा त्योंही वे रथ से उतर आये और उन्होंने दिव्य भगवान् के स्नेह से अभिभूत होने के कारण उनके चरणकमलों पर गिर कर उन्हें सादर प्रणाम किया।" ये कृष्ण से सिद्धि योग के कुछ उदाहरण हैं।

जब दीर्घकालीन विरह के बाद भक्त कृष्ण से मिलता है तो यह तुष्टि योग कहलाता है। *श्रीमद्भागवत* में (१.११.१०) कहा गया है कि जब भगवान् लौट कर अपनी राजधानी द्वारका आये तो वहाँ के निवासी बोले, "हे प्रभु! यदि आप इतने दीर्घकाल तक विदेश में रहेंगे तो हम आपके मुस्काते मुखमंडल के दर्शन से वंचित रह जाएँगे। हम आपके शाश्वत दास आपके मुखमंडल को देखकर अत्यधिक संतुष्ट रहते हैं और हमारे जीवन की सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं। यदि हम आपको द्वारका से देर तक दूर रहने के कारण नहीं देख पायेंगे तो हमारे लिए जीवित रहना असम्भव हो जायेगा।" यह दीर्घकालीन वियोग के बाद कृष्ण से मिलने की तुष्टि का उदाहरण है।

कृष्ण का निजी सेवक दारुक कृष्ण को द्वारका के द्वार पर आया देखकर उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम करना भूल गया।

जब भक्त अन्ततोगत्वा कृष्ण के सान्निध्य को प्राप्त होता है तो उसकी भक्ति-दशा को *स्थिति* कहते हैं। इस स्थिति का वर्णन *हंसदूत* नामक पुस्तक में आया है जहाँ यह बतलाया गया है कि गोपियों द्वारा साक्षात् आतंक माने जाने वाले अक्रूर किस प्रकार कृष्ण से कुरुवंश के कार्यों के विषय में बातें करते थे। ऐसी ही स्थिति-दशा बृहस्पति के शिष्य उद्धव को प्राप्त थी। वे सदैव उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते हुए उनके चरणकमल दबाते थे।

जब कोई भक्त भगवान् की सेवा में रत रहता है तो उसे *योग* को प्राप्त हुआ कहा जाता है। योग का अर्थ है जुड़ना। अतएव कृष्ण के साथ असली जुड़ने की क्रिया तब शुरू होती है जब भक्त उनकी सेवा करता है। दास्य में स्थित भक्त सेवा का अवसर प्राप्त होते ही अपनी विशिष्ट सेवा अर्पित करते हैं। कभी-कभी आदेश प्राप्त करने के लिए वे कृष्ण के समक्ष बैठ जाते हैं। कुछ लोग भक्ति के इस स्तर को *भक्तियोग* मानने में आनाकानी करते हैं और कुछ पुराणों में भी इस तरह की भक्ति को वास्तविक भक्तियोग स्वीकार नहीं किया गया। किन्तु *श्रीमद्भागवत* में स्पष्ट संकेत है कि कृष्ण के साथ दास्य सम्बन्ध ही योग साक्षात्कार का वास्तविक शुभारम्भ है।

श्रीमद्भागवत में (११.३.३२) कहा गया है कि भक्तियोग में रत भक्तगण कभी-कभी कृष्ण का चिन्तन करते-करते क्रन्दन करते हैं, कभी हँसते हैं, कभी हर्षित होते हैं, कभी असामान्य प्रकार से बातें करते हैं, कभी नाचते हैं, तो कभी गाते हैं, कभी वे भगवान् की असली सेवा में संलग्न रहते हैं तो कभी वे समाधि में तल्लीन जैसे होकर मौन बैठे रहते हैं।

इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* में ही (७.७.३४) प्रह्लाद महाराज अपने मित्रों से कहते हैं, "मित्रो! शुद्ध भक्त ज्योंही लीला के आगार भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं को सुनते हैं या उनके दिव्य गुणों का श्रवण करते हैं तो वे हर्ष से विभोर हो उठते हैं। उनके शरीर में अनुभाव प्रकट हो जाते हैं। वे आँसू बहाते हैं, रुद्ध स्वर से बोलते हैं, उच्च स्वर से भगवान् का गुणगान करते हैं और भावावेश में कीर्तन करते हैं और नाचते हैं। ये स्थायी भाव हैं, किन्तु कभी-कभी वे सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर जाते हैं और ये लक्षण सबों के समक्ष प्रकट हो जाते है।"

भगवान् की शरणागति की प्रक्रिया के छः अंग हैं—भक्ति के अनुकूल हर बात को स्वीकार करना, भक्ति के प्रतिकूल हर बात का तिरस्कार करना, यह विश्वास रखना कि कृष्ण सदैव रक्षा करेंगे, कृष्ण-भक्तों के रूप में अपनी पहचान करना, कृष्ण की सहायता के बिना असमर्थता का अनुभव करना और सदैव अपने को कृष्ण से हीन मानना, भले ही सारे काम करने की क्षमता स्वयं किसी में हो। जब मनुष्य सुचारु रूप से आश्वस्त हो लेता है कि प्रत्येक दशा में कृष्ण उसकी रक्षा करेंगे तो यह विचार गौरव भक्ति कहलाता है। यह भक्ति भगवान् के साथ तथा उनके द्वारा रक्षित अन्य भक्तों के साथ की जाती है।

जब कृष्ण द्वारका में रह रहे थे तो यदुकुल के कुछ वयोवृद्ध लोग समय-समय पर उनके सामने महत्वपूर्ण मामले रखते थे। ऐसे अवसर पर कृष्ण उन मामलों पर पूरा-पूरा ध्यान देते थे। यदि उनमें कोई हँसी की बात आती तो कृष्ण के मुख पर भी हँसी आ जाती थी। कभी-कभी जब कृष्ण सुधर्मा नामक सभा में अपना कार्य करते होते तो वे गुरुजनों की सलाह लेते थे। ऐसे कार्यों से वे परम गुरु, परम कार्याध्यक्ष, परम बुद्धि, परम शक्ति, रक्षक तथा पालक के रूप में प्रकट होते हैं।

अध्याय चालीस

पुत्रों तथा अन्य अधीनों (सेवकों) की गौरव-भक्ति

असली गौरव भक्ति उन व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित की जाती है जो अपने को कृष्ण के अधीन तथा कृष्ण के पुत्रों के सदृश मानते हैं। अधीनता के सर्वोत्तम उदाहरण सारण, गद तथा सुभद्र हैं। ये सभी यदुवंश के सदस्य थे और ये अपने को सदैव कृष्ण द्वारा रक्षित मानते थे। इसी प्रकार कृष्ण के पुत्र यथा प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा साम्ब भी अपने आप को रक्षित मानते थे। द्वारका में कृष्ण के अनेक पुत्र थे। उनकी १६१०८ रानियों में से प्रत्येक के दस पुत्र उत्पन्न हुए थे और ये सभी पुत्र, जिनमें प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा साम्ब प्रमुख हैं, अपने को सदैव कृष्ण द्वारा रक्षित मानते थे। जब कृष्ण के पुत्र उनके साथ भोजन करने बैठते तो कृष्ण उनके मुखों में भोजन डाला करते थे। कभी-कभी जब कृष्ण अपने किसी पुत्र को दुलारते तो वह कृष्ण की गोद में बैठ जाता और वे उस का सिर सूँघ कर आशीर्वाद देते और अन्य पुत्र यह सोच कर अश्रुपात करते कि इसने पूर्व जन्म में कितना पुण्य कमाया होगा। कृष्ण के पुत्रों में से उनकी पटरानी रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न प्रधान माना जाता है। प्रद्युम्न के शारीरिक लक्षण कृष्ण के लक्षणों से पूरी तरह मिलते-जुलते हैं। कृष्ण के शुद्ध भक्त प्रद्युम्न की महिमा का गान करते हैं, क्योंकि वे भाग्यशाली जो हैं—यथा पिता तथा पुत्र।

हरिवंश में प्रद्युम्न के उस समय के कार्यकलापों का वर्णन मिलता है जब उसने प्रभावती का हरण किया था। उस समय उसने प्रभावती से कहा था, "प्रिये! हमारे कुल के मुखिया श्रीकृष्ण को देखो। वे साक्षात् विष्णु हैं, जिनका वाहन गरुड़ है और वे हम सबों के परम स्वामी हैं। चूँकि वे हमारी रक्षा करते हैं इसलिए हम इतने गर्वित एवं आश्वस्त रहते हैं कि त्रिपुरारि (शिव जी) से भी लड़ने में हमें संकोच नहीं होता।"

सम्भ्रम एवं गौरव के साथ भक्ति में संलग्न भक्तों के दो प्रकार होते हैं—भगवान् के अधीनस्थ तथा भगवान् के पुत्र। द्वारका धाम के सेवक कृष्ण की पूजा अत्यन्त सम्मानित भगवान् के रूप में करते हैं। वे कृष्ण के अतिश्रेष्ठ ऐश्वर्य के कारण उन पर

मुग्ध रहते हैं। जो सदस्य कृष्ण द्वारा अपने को रक्षित मानते थे वे समय पड़ने पर अपने विश्वास की पुष्टि हुई देखते थे, क्योंकि यह देखा गया है कि कृष्ण के पुत्रों ने कई स्थानों पर अनीतिपूर्ण व्यवहार किया तब भी उन्हें कृष्ण तथा बलराम का पूरा संरक्षण प्राप्त हुआ।

कृष्ण के अग्रज भ्राता बलराम तक अनजाने ही कृष्ण का आदर करते थे। एक बार कृष्ण ने अपने समक्ष आये बड़े भाई बलराम जी को प्रणाम करना चाहा, किन्तु इसके पूर्व ही बलराम की गदा कृष्ण के चरणकमलों पर झुक गई अर्थात् बलराम के हाथ की गदा ने कृष्ण को प्रणाम किया। अधीनता के ये भाव कभी-कभी *अनुभाव* के रूप में प्रकट होते हैं।

जब स्वर्ग से देवता कृष्ण के पास आये तो कृष्ण के सभी पुत्र भी उनके साथ हो लिये और ब्रह्मा जी ने उन सबों पर अपने कमण्डल से जल छिड़का। जब देवतागण कृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए तो कृष्ण के पुत्र सोने के आसनों पर न बैठ कर भूमि पर बिछी मृगछाला पर बैठ गये।

कभी-कभी कृष्ण के पुत्रों का व्यवहार कृष्ण के निजी सेवकों जैसा प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, ये पुत्र प्रणाम किया करते थे, ये मौन, विनीत तथा भद्र थे और प्राणों को भी संकट में डाल कर कृष्ण के आदेशों का पालन करने के लिए उद्यत रहते थे। कृष्ण के समक्ष वे सिर नीचा किये रहते थे। वे अत्यन्त शान्त और स्थिर रहते थे और कृष्ण के समक्ष कभी भी हँसते या खाँसते नहीं थे। यही नहीं, वे कभी कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम की चर्चा भी नहीं करते थे। दूसरे शब्दों में, जो भक्त गौरव भक्ति में लगे हुए हैं उन्हें कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम की चर्चा नहीं करनी चाहिए। किसी को कृष्ण से अपने नित्य संबंध का दावा नहीं करना चाहिए जब तक वह मुक्त न हुआ हो। जीवन की बद्ध अवस्था में भक्तों को शास्त्रों में संस्तुत भक्ति के विधि-विधानों का पालन करना चाहिए। जब कोई भक्ति में परिपक्व और स्वरूपसिद्ध हो जाता है तो वह कृष्ण के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को जान सकता है। बनावटी रूप से भक्त को कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिए। अपरिपक्व अवस्था में कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि कामी बद्धपुरुष कृष्ण के साथ दाम्पत्य प्रेम का कोई सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह *प्राकृत* सहजिया बन जाता है अर्थात् हर बात को निकृष्ट ढंग से लेने वाला। यद्यपि ऐसे लोग कृष्ण के साथ दाम्पत्य-प्रेम स्थापित करने के लिए आतुर रहते हैं, किन्तु भौतिक जगत् में उनका बद्ध-जीवन अत्यन्त अधम होता है। जो व्यक्ति वास्तव में कृष्ण से अपना सम्बन्ध स्थापित

कर चुकता है वह भौतिक स्तर पर कार्य नहीं करता और उसके व्यक्तिगत चरित्र की आलोचना नहीं की जा सकती।

एक बार जब कामदेव भगवान् कृष्ण से मिलने आया तो किसी भक्त ने उससे कहा, "हे कामदेव! चूँकि तुमने कृष्ण के चरणकमलों पर अपनी दृष्टि डाली है, अतएव तुम्हारे शरीर के पसीने की बूँदें जम गई हैं और वे *कण्टकी* फल के समान प्रतीत हो रही है (कंटीली झाड़ियों में फलने वाले छोटे फल को कण्टकी कहा जाता है)।" ये वचन भगवान् के प्रति भाव तथा गौरव के लक्षण हैं। जब यदुकुल के राजकुमारों ने कृष्ण के पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनी तो हर्ष के कारण उनके शरीर के रोंगटे तुरन्त खड़े हो गये। तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो राजकुमारों के शरीर के रोंगटे भाव नृत्य कर रहे हों।

हर्ष के अतिरिक्त कभी-कभी निराशा के लक्षण प्रकट होते हैं। एक बार प्रद्युम्न ने साम्ब से इस प्रकार कहा "हे साम्ब! आप इतने यशस्वी पुरुष हैं! मैंने देखा है कि एक बार जब आप भूमि पर खेल रहे थे तो आपके शरीर में धूल लग गई थी, किन्तु इतने पर भी हमारे पिता भगवान् कृष्ण ने आपको अपनी गोद में उठा लिया था। किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि मुझे अपने पिताश्री से कभी ऐसा प्यार नहीं मिल सका।" यह कथन प्रेम में निराशा का उदाहरण है।

कृष्ण को अपने से श्रेष्ठ मानना गौरव भाव कहलाता है और जब इसके अतिरिक्त भक्त यह भी अनुभव करता है कि कृष्ण उसके रक्षक हैं तो कृष्ण के प्रति उसका दिव्य प्रेम बढ़ जाता है और उसकी संयुक्त भावनाएँ गौरव-भक्ति कहलाने लगती हैं। जब यह स्थिर गौरव-भक्ति और आगे बढ़ती है तो यह गौरव-भक्ति में ईश-प्रेम कहलाता है। इस अवस्था में आकर्षण तथा स्नेह दो प्रमुख लक्षण होते हैं। इस गौरव-भक्ति मनोवृत्ति के कारण प्रद्युम्न अपने पिता से कभी ऊँची आवाज में नहीं बोलता था। वास्तव में, उसने कभी अपना मुँह ही नहीं खोला, न ही कभी अपना रुँआसा चेहरा दिखलाया। वह सदैव अपने पिता के चरणकमलों पर दृष्टि लगाये रहता।

कृष्ण के प्रति स्थिर प्रेम का एक अन्य उदाहरण है अर्जुन द्वारा अपने पुत्र एवं कृष्ण के भानजे अभिमन्यु की मृत्यु की सूचना देना। अभिमन्यु कृष्ण की छोटी बहन सुभद्रा का पुत्र था। वह कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन की सेना के समस्त सेनापतियों—कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, भीष्म, कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य के संयुक्त प्रयास से मारा गया था। कृष्ण को आश्वस्त करने के लिए कि सुभद्रा की ओर से प्रेम में कोई अन्तर नहीं आया,

अर्जुन ने कहा, ''यद्यपि आपके होते हुए अभिमन्यु मारा गया है, किन्तु न तो आपके प्रति सुभद्रा का प्रेम विचलित हुआ है, न ही उसमें कोई अन्तर आया है।''

अपने भक्तों के प्रति कृष्ण का स्नेह तब व्यक्त हुआ जब कृष्ण ने प्रद्युम्न से कहा कि उनके समक्ष वह लज्जित न हो। उन्होंने प्रद्युम्न से कहा, ''बेटे! हीन भावना को निकाल दो और मुँह मत लटकाओ। मुझसे स्पष्ट बोलो और आँसू मत बहाओ। तुम मेरी ओर सीधे देखो और बिना झिझक के मेरे शरीर पर अपना हाथ रखो। अपने पिता के समक्ष इतना आदर प्रदर्शित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

कृष्ण के प्रति प्रद्युम्न की अनुरक्ति उसके कार्य से प्रदर्शित होती थी। जब भी उससे उस के पिता द्वारा कुछ करने के लिए कहा जाता तो वह तुरन्त आदेश का पालन करता था और विषतुल्य कार्य को भी अमृत समझता था। इसी तरह जब भी वह यह देखता कि कोई कार्य उसके पिताश्री को पसन्द नहीं तो वह अमृत जैसे कार्य को भी विषतुल्य समझ कर त्याग देता था।

कृष्ण के लिए प्रद्युम्न की चिन्ता में अनुरक्ति तब व्यक्त हुई जब उसने अपनी पत्नी रति से कहा, ''हमारा शत्रु शम्बर मारा जा चुका है। अब मैं अपने पिता को देखने के लिए उत्सुक हूँ जो मेरे गुरु हैं और सदैव पांचजन्य शंख धारण किये रहते हैं।'' जब कृष्ण वृन्दावन छोड़कर कुरुक्षेत्र के युद्ध स्थल में गये हुए थे तो प्रद्युम्न को कृष्ण का विरह सता रहा था। उसने कहा, ''जब से मेरे पिता द्वारका से गये हैं तब से न तो मुझे युद्ध का अभ्यास करना अच्छा लगता है न किसी प्रकार की क्रीड़ा में मन लगता है। इन बातों को छोड़ दें, मुझे तो अपने पिता की अनुपस्थिति में द्वारका में रहना भी अच्छा नहीं लग रहा।''

जब प्रद्युम्न शम्बरासुर को मार कर घर लौटा और उसने अपने पिता कृष्ण को अपने सामने देखा तो वह इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि कुछ कहा नहीं जा सकता। यह उदाहरण है विरह में सफलता का। इसी प्रकार की तुष्टि का अनुभव तब हुआ था जब कृष्ण कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल से अपने घर द्वारका आये थे। उनके सारे पुत्र इतने हर्षित हुए थे कि भाववश वे अनेक त्रुटियाँ बार-बार करने लगे। ये त्रुटियाँ पूर्ण तुष्टि की चिह्न थीं।

प्रद्युम्न प्रतिदिन अश्रुपूरित नेत्रों से कृष्ण के चरणारविन्दों को देखता था। प्रद्युम्न में गौरव भक्ति के इन लक्षणों का उसी तरह वर्णन होना चाहिए जैसा कि अन्य भक्तों के विषय में वर्णन किया जा चुका है।

अध्याय इकतालीस

सख्य भक्ति

जब कोई भक्त स्थायी रूप से भक्ति करता है और विभिन्न अनुभावों द्वारा भगवान् के प्रति सख्य रस परिपक्व कर लेता है तो उसकी भावना को ईश्वर के लिए सख्य प्रेम कहा जाता है।

ईश्वर के प्रति ऐसे सख्य प्रेम को उद्दीप्त करने वाले साक्षात् ईश्वर हैं। जब कोई मुक्त हो जाता है और परमेश्वर से अपने नित्य सम्बन्ध को जान लेता है तो साक्षात् भगवान् सख्य प्रेम को बढ़ाने के लिए उद्दीपन बन जाते हैं। वृन्दावन में भगवान् के नित्य पार्षदों ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है ''जिसके बदन का रंग इन्द्रनील मणि जैसा है, जिसकी मुसकान कुन्द पुष्प की भाँति सुन्दर है, जिसका रेशमी वस्त्र शरदकालीन सुनहरी पत्तियों सा पीला है, जिसका वक्षस्थल फूल की मालाओं से सुशोभित है और जो सदैव अपनी बाँसुरी बजाता है—ऐसा अघासुर का शत्रु यह हरि वृन्दावन में इधर-उधर विचरण करके हमारे हृदयों को सदैव आकृष्ट कर रहा है।''

इसी प्रकार सख्य प्रेम की बातें वृन्दावन मंडल के बाहर भी की जाती हैं। जब महाराज युधिष्ठिर आदि पांडवों ने कुरुक्षेत्र के युद्ध स्थल में कृष्ण के चतुर्भुज रूप को शंख, चक्र, गदा तथा कमल पुष्प से युक्त देखा तो उन्हें अपनी सुधि नहीं रही और वे सुख के अमृतसागर में मग्न हो गये। इससे पता चलता है कि पाण्डु-पुत्र—राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—कृष्ण के प्रति सख्य प्रेम में बँधे हुए थे।

कभी-कभी भिन्न-भिन्न नामों, रूपों, साज-सामग्री तथा दिव्य गुणों के कारण सख्य प्रेम उद्भुत होता है। उदाहरणार्थ, कृष्ण की सुन्दर वेशभूषा, उनका बलिष्ठ शरीर, उनके शरीर के सर्वमंगलकारी लक्षण, उनका विभिन्न भाषाओं का ज्ञान, उनके *भगवद्गीता* के पांडित्यपूर्ण उपदेश, उद्योग के समस्त क्षेत्रों में उनकी असामान्य प्रतिभा, उनके द्वारा पटु ज्ञान का प्रदर्शन, उनकी कृपा, उनकी बहादुरी, दम्पति प्रेमी के रूप में उनका आचरण, उनकी बुद्धि, उनकी क्षमाशीलता, सभी प्रकार के लोगों के लिए उनका आकर्षण, उनका ऐश्वर्य तथा उनका सुख—ये सभी सख्य प्रेम को उद्दीप्त करते हैं।

वृन्दावन में कृष्ण के पार्षदों को देखकर सख्य भाव का उद्दीपन भी अत्यन्त स्वाभाविक है, क्योंकि उनके शारीरिक स्वरूप, उनके गुण तथा उनके वस्त्र सभी कुछ कृष्ण के ही समान होते हैं। ये पार्षद कृष्ण की सेवा में रहकर सदैव प्रसन्न रहते हैं और सामान्यतया *वयस्य* अर्थात् समान आयु वाले कहे जाते हैं। ये वयस्य कृष्ण द्वारा संरक्षण के प्रति पूर्णतया विश्वस्त रहते हैं। कभी-कभी भक्तगण प्रार्थना करते हैं, "हम कृष्ण के वयस्यों को सादर प्रणाम करते हैं जिन्हें कृष्ण की मित्रता तथा संरक्षण का पूरा-पूरा विश्वास है और कृष्ण के प्रति जिनकी भक्ति सदैव स्थिर रहती है। वे निर्भय हैं और वे कृष्ण के ही समान स्तर पर अपनी दिव्य प्रेमा-भक्ति सम्पन्न करते हैं।" ऐसे नित्य वयस्य वृन्दावन मंडल से परे, द्वारका तथा हस्तिनापुर जैसे स्थानों में भी पाये जाते हैं। वृन्दावन के अतिरिक्त कृष्ण के सारे लीलास्थल *पुर* (नगर) कहलाते हैं। मथुरा तथा कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर दोनों ही *पुर* हैं। अर्जुन, भीम, द्रौपदी तथा श्रीदामा ब्राह्मण जैसे व्यक्तियों की गणना पुरों के सख्य भक्तों में की जाती है।

पाण्डवों ने कृष्ण के सान्निध्य का जिस प्रकार भोग किया उसका वर्णन इस प्रकार है "जब श्रीकृष्ण कुरुओं की राजधानी इन्द्रप्रस्थ में पधारे तो महाराज युधिष्ठिर तुरन्त बाहर निकल आये और उन्होंने उनका सिर सूँघा।" वैदिक प्रथा के अनुसार जब कोई छोटा व्यक्ति अपने से वयोवृद्ध के चरण स्पर्श करता है तो वयोवृद्ध अपने से छोटों का सिर सूँघते हैं। इसी प्रकार अर्जुन तथा भीम ने कृष्ण का आलिंगन अतीव हर्षपूर्वक किया जब कि नकुल तथा सहदेव ने छोटे होने के कारण आँखों में अश्रु भर कर कृष्ण के चरणकमल छुए और प्रणाम किया। इस तरह पाँचों पाण्डवों ने दिव्य रस में कृष्ण की सख्य मैत्री का आनन्द उठाया। पाँचों पांडवों में, अर्जुन कृष्ण के अधिक घनिष्ट हैं। उनके हाथ में गांडीव नामक सुन्दर धनुष रहता है। उनकी जाँघों की उपमा हाथी की सूँड़ों से दी जाती है और उनकी आँखें सदैव रक्तिम रहती हैं। जब कृष्ण तथा अर्जुन रथ में साथ-साथ होते हैं तो उनकी शोभा स्वर्गिक हो जाती है जिससे वे हर एक की आँखों को मनोहर लगते हैं। कहा जाता है कि एक बार अर्जुन अपने बिस्तर में लेटे थे तो उनका सिर कृष्ण की गोद में था और वे आनन्द से कृष्ण से बातें तथा हास-परिहास कर रहे थे। इस तरह वे कृष्ण की संगति का आनन्द हँसी तथा अत्यधिक तुष्टि में ले रहे थे।

जहाँ तक वृन्दावन के वयस्यों का सम्बन्ध है, वे यदि कृष्ण को क्षण भर भी नहीं देखते तो अत्यन्त दुखी हो उठते हैं। वृन्दावन के वयस्यों की स्तुति एक भक्त

इस प्रकार करता है, "कृष्ण के वयस्यों की जय हो जो अपनी उम्र, गुणों, लीलाओं, वस्त्र तथा सौन्दर्य में कृष्ण के ही समान हैं। वे ताड़पत्रों से बनी अपनी वंशियों को बजाने के आदी हैं और उन सबों के पास जो महिष-शृंग हैं वे कृष्ण के ही शृंग की भाँति इन्द्रनील मणि तथा सोने और मूँगे से जटित हैं। वे सभी सदैव कृष्ण की भाँति हर्षित रहते हैं। श्रीकृष्ण के ये यशस्वी साथी सदैव हमारी रक्षा करें।"

वृन्दावन के वयस्यों की कृष्ण के साथ ऐसी घनिष्ठ मित्रता है कि कभी-कभी वे अपने को कृष्ण जैसा श्रेष्ठ मान बैठते हैं। ऐसे मैत्री भाव का एक उदाहरण इस प्रकार है—जब कृष्ण गोवर्धन पर्वत को अपने बाएँ हाथ से ऊपर उठाये हुए थे तो वयस्यों ने कहा, "हे मित्र! आप पिछले सात दिन और रात से खड़े हैं और तनिक भी आराम नहीं कर पाये। यह हमारे लिए अत्यन्त कष्टदायक है, क्योंकि हम देखते हैं कि आपने बहुत ही कठिन काम ले रखा है। अतएव हम सोचते हैं कि आप इस प्रकार से पर्वत धारण किये हुए खड़े न रहें। आप इसे सुदामा के हाथों में दे सकते है। हम आपको इस स्थिति में देख कर अधिक दुखी हैं। यदि आप सोचते हैं कि सुदामा गोवर्धन पर्वत को नहीं उठाये रह सकता तो कम से कम आप हाथ तो बदल लीजिये। आप इसे बाएँ हाथ से उठाये न रहकर दाहिने हाथ में कर लें जिससे हम आपके बाएँ हाथ की मालिश कर सकें।" यह घनिष्ठता का उदाहरण है जो यह दिखलाता है कि वयस्य-जन किस तरह अपने को कृष्ण के समान मानते थे।

श्रीमद्भागवत में (१०.१२.११) शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित से कहते हैं, "हे राजन! श्रीकृष्ण विद्वान अध्यात्मवादियों के लिए भगवान् हैं; निर्विशेषवादी के लिए वे अतीव हर्ष हैं; वे भक्त के लिए परम आराध्य अर्चाविग्रह हैं और माया के वशीभूत व्यक्ति के लिए एक सामान्य बालक हैं। जरा सोचो तो, ये ग्वालबाल परम पुरुष के साथ उसी तरह खेल रहे हैं मानो उनके तुल्य स्तर पर हों। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने पूर्वजन्म में प्रचुर पुण्यकर्मों के ढेरों फल कमा लिए हैं जिस से वे घनिष्ठ मित्र के रूप में भगवान् के संगी बन सके।"

वृन्दावन के वयस्यों के प्रति कृष्ण की भावना का भी वर्णन मिलता है। एक बार उन्होंने बलराम से कहा, "हे भ्राता! जब मेरे साथियों को अघासुर निगल रहा था तो मेरी आँखों से तप्त अश्रु लुढ़क रहे थे। और जब ये अश्रु मेरे गालों का प्रक्षालन कर रहे थे तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता! मैं एक क्षण के लिए आत्मविस्मृत हो गया।"

गोकुल में कृष्ण के वयस्यों को चार समूहों में बाँटा जाता है—१) शुभचिन्तक २) सखा ३) विश्वासपात्र सखा तथा ४) घनिष्ठ सखा। श्रीकृष्ण के शुभचिन्तक मित्र उनसे तनिक बड़े होते हैं और उनमें कृष्ण के प्रति वात्सल्य पाया जाता है। कृष्ण से बड़े होने के कारण वे सदैव हर विपत्ति से कृष्ण की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। फलत: वे कभी-कभी हथियार धारण करते हैं जिससे वे कृष्ण को हानि पहुँचाने वाले आततायी को दण्डित कर सकें। उनके शुभचिन्तकों में सुभद्र*, मण्डलीभद्र, भद्रवर्धन, गोभट, यक्ष, इन्द्रभट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, महागुण, विजय तथा बलभद्र हैं। वे सदैव कृष्ण से बड़े होने के कारण उनके कल्याण की कामना करते हैं।

एक वयोवृद्ध मित्र ने कहा, ''हे मण्डलीभद्र! तुम चमचमाती तलवार क्यों घुमा रहे हो? क्या तुम अरिष्टासुर को मारने जा रहे हो? हे बलदेव! तुम व्यर्थ ही इस भारी हल को क्यों धारण किये हो? हे विजय! तुम व्यर्थ ही उत्तेजित न होओ। हे भद्रवर्धन! इस प्रकार गरजने-तरजने की आवश्यकता नहीं है। यदि ध्यान से देखोगे तो पता लगेगा कि यह केवल गोवर्धन पर्वत के ऊपर गरजने वाला एक बादल है। यह अरिष्टासुर नहीं है जिसे तुम लोगों ने साँड़ जैसा समझ रखा है।'' कृष्ण के इन बड़े शुभचिन्तक मित्रों ने विशाल बादल को एक बड़े साँड के रूप में प्रकट होने वाला अरिष्टासुर समझा था और इसी उत्तेजना के बीच एक ने निश्चित रूप से बतलाया कि वास्तव में यह गोवर्धन पर्वत के ऊपर एक बादल था। अतएव उसने अन्य सभी मित्रों को सूचित किया कि कृष्ण के विषय में चिन्तित न हों, क्योंकि इस समय अरिष्टासुर से कोई भय नहीं है।

इन शुभचिन्तक मित्रों में मण्डलीभद्र तथा बलभद्र प्रधान है। मण्डलीभद्र का वर्णन इस प्रकार है—उसका रंग पीला और उसके वस्त्र अत्यन्त आकर्षक है, वह हमेशा एक रंगबिरंगी लाठी लिए रहता है। वह सदैव सिर पर मोर पंख धारण करता है और अत्यन्त सुन्दर लगता है। मण्डलीभद्र के स्वभाव का पता इस कथन से चलता है, ''मित्रो! हमारे कृष्ण चरागाहों में गौवें चराने से तथा जंगलों में चलने फिरने से अब थक गये है। मैं देख रहा हूँ कि वे बहुत थक गये हैं; अतएव अपने घर में विश्राम करते हुए उनके सिर को तो मैं सहलाता हूँ और सुबल, तुम उनकी जाँघों की मालिश कर दो।''

* इससे कृष्ण की बहिन सुभद्रा का भ्रम नहीं होना चाहिए।

एक भक्त ने बलदेव के निजी सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया, ''मैं उन बलराम के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जिनका सौन्दर्य उनके गालों का स्पर्श करने वाले कुण्डलों से बढ़ जाता है। उनका मुखमंडल कस्तूरी से बनाये गये तिलक से सुशोभित है और उनका विशाल वक्षस्थल गुञ्जा की माला से सुशोभित है। उनका रंग शरदकालीन शुभ्र बादल के समान है। वे नीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं और उनकी वाणी अत्यन्त गम्भीर है। वे आजानुभुज हैं और उन्होंने प्रलम्बासुर को मार कर अपनी महान शक्ति का परिचय दिया है। मैं ऐसे पराक्रमी बलदेव* की शरण लेता हूँ।''

कृष्ण के प्रति बलदेव का स्नेह सुबल के इस कथन में व्यंजित हुआ है, ''हे सखा! कृपा करके कृष्ण से कह दें कि वे आज कालिय दह के लिए न जायँ। आज उनका जन्मदिन है, अतएव मैं उन्हें माता यशोदा के साथ स्नान कराने जाऊँगा। उनसे कह दो कि आज घर से बाहर कहीं न जायँ।'' इससे प्रकट है कि कृष्ण के अग्रज बलराम किस वात्सल्य प्रेम से कृष्ण की देखभाल करते थे।

जो मित्रगण कृष्ण से छोटे हैं, जो उनसे सदा जुड़े रहते हैं और सभी प्रकार से उनकी सेवा करते हैं ऐसे मित्र सामान्य *सखा* कहलाते हैं और इनमें से कुछ के नाम विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, मरन्द, कुसुमापीड़, मणिबन्ध तथा करन्धम हैं। ये कृष्ण के सारे सखा केवल उन्हीं की सेवा करना चाहते हैं। उनमें से कुछ भोर होते ही उठकर कृष्ण के दरवाजे पर जाकर उनका दर्शन करने और उनके साथ चरागाह तक जाने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। तभी माता यशोदा कृष्ण को कपड़े पहनातीं और जब वे किसी बालक को द्वार पर खड़ा देखतीं तो वे उसे पुकारतीं ''अरे विशाल! तुम वहाँ क्यों खड़े हो? यहाँ आओ!'' अतएव माता यशोदा की अनुमति से वह तुरन्त घर में प्रवेश करता। जब माता यशोदा कृष्ण को वस्त्र पहनाती होतीं तो वह कृष्ण को नूपुर पहनाने में सहायता करता और हँसी विनोद में कृष्ण उसे बाँसुरी से मारते।

कभी-कभी जब कृष्ण तथा उनके सखा चरागाह जाते तो कंस कृष्ण को मारने के लिए असुर भेजता। इस तरह प्राय: प्रतिदिन किसी न किसी असुर से लड़ाई होती

* बलराम तथा बलदेव कृष्ण के एक ही अंश के भिन्न नाम है। ये कृष्ण के बड़े भाई है। तब माता यशोदा पुकारतीं, ''हे कृष्ण! यह क्या है? तुम अपने मित्र को तंग क्यों कर रह हो?'' तब कृष्ण हँस देते और मित्र भी हँस देता। ये कतिपय कार्यकलाप हैं कृष्ण के सखाओं के। कभी-कभी सखा-गण इधर-उधर गई गौवों की रखवाली करते और वे कृष्ण से कहते ''तुम्हारी गौवें तितर-बितर हो रही थीं।'' और कृष्ण उन्हें धन्यवाद देते।

रहती। असुर से लड़ने के बाद कृष्ण थक जाते और उनके बाल सिर पर बिखर जाते। तब उनके सखा उनके पास पहुँच कर तरह-तरह से उन्हें विश्राम दिलाने का प्रयास करते। कुछ सखा कहते, "अरे विशाल! यह कमलपत्र का पंखा लेकर कृष्ण पर झलो जिससे उन्हें आराम मिले। वरूथप! तुम कृष्ण के मुख पर बिखरे सिर के बालों में कंघी कर दो। वृषभ! तुम व्यर्थ की बातें मत करो; शीघ्र कृष्ण का शरीर दबाओ; उनकी बाहें उस असुर से लड़ने और कुश्ती करने के कारण थक गई हैं। देख नहीं रहे हो कि हमारे सखा कृष्ण कितने थक चुके हैं।" ये कतिपय उदाहरण हैं कृष्ण के प्रति सखाओं के व्यवहार के।

उनके एक सखा देवप्रस्थ का वर्णन इस प्रकार हुआ है। वह अत्यन्त बलशाली, आशुविद्वान और गेंद खेलने में दक्ष है। वह श्वेत वस्त्र पहनता है और बालों को फीते से गुच्छे के रूप में बाँधता है। जब भी कृष्ण एवं असुरों में युद्ध होता तो देवप्रस्थ सहायता करने के लिए सबसे आगे रहता और हाथी की तरह लड़ता।

एक गोपी अपनी सखी से एक बार कहती है, "हे सुमुखी! जब महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण पर्वत की गुफा में आराम कर रहे थे तो वे अपना सिर श्रीदामा की बाँहों में रखे थे और अपने बाएँ हाथ को दामा की छाती पर रखे थे। इस अवसर का लाभ उठाकर देवप्रस्थ कृष्ण के प्रति वत्सल होकर तुरन्त उनके पाँव दबाने लगा।" कृष्ण के सखाओं के ऐसे कार्यकलाप चरागाह में चलते रहते थे।

अधिक विश्वासपात्र मित्र *प्रिय-सखा* कहलाते हैं और वे लगभग कृष्ण के ही समवयस्क हैं। अत्यधिक प्रिय होने के कारण उनका व्यवहार शुद्ध मैत्री के आधार पर ही होता है। अन्य मित्रों का व्यवहार वात्सल्य या दास्य के आधार पर होता है, किन्तु प्रिय-सखाओं का मूल सिद्धान्त समान स्तर पर एकमात्र मैत्री होता है। कुछ प्रिय सखाओं के नाम हैं—श्रीदामा, सुदामा, दामा, वसुदामा, किंकिणि, स्तोक-कृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटंक तथा कलविंक। ये सारे सखा विभिन्न लीलाओं में अपने-अपने कार्यकलापों से कृष्ण को दिव्य आनन्द प्रदान करते थे।

इन प्रिय सखाओं के आचरण का वर्णन राधारानी की एक सखी उनसे इस प्रकार करती है, "हे सुमुखी राधारानी! तुम्हारे प्रिय सखा कृष्ण अन्य प्रिय बाल मित्रों द्वारा भी सेवित हैं। उनमें से कुछ मित्र अत्यन्त मृदु वाणी में उनसे विनोद करते हैं और इस तरह उन्हें अत्यन्त प्रसन्न करते हैं।" उदाहरणार्थ, कृष्ण के एक ब्राह्मण मित्र का नाम मधुमंगल था। यह बालक एक लोभी ब्राह्मण की भूमिका निभाकर सदैव परिहास

करता था। जब भी सारे मित्र खाने बैठते तो वह सबों से अधिक खाता, विशेषतया वह लड्डुओं का सर्वाधिक प्रेमी था। सबों की अपेक्षा अधिक लड्डू खाकर भी मधुमंगल संतुष्ट नहीं होता था और कृष्ण से कहा करता, "यदि आप मुझे एक लड्डू और दें तो मैं प्रसन्न होकर आशीर्वाद दूँगा जिससे तुम्हारी सखी राधारानी तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हो जायेगी।" ब्राह्मण लोग वैश्यों (कृषकों तथा बनियों को) आशीर्वाद देते हैं और कृष्ण अपने को नन्द महाराज के पुत्र के रूप में प्रस्तुत करते जो वैश्य थे; अतएव उस ब्राह्मण बालक का कृष्ण को आशीर्वाद देना ठीक ही था। इस तरह कृष्ण उसके आशीर्वाद से परम प्रसन्न होते और उसे अधिक लड्डू देते रहते।

कभी-कभी कोई प्रिय-सखा कृष्ण के समक्ष आकर उन्हें अत्यन्त स्नेह एवं प्यार से गले लगा लेता। तभी पीछे से एक दूसरा मित्र आकर अपने हाथों से उनकी आँखें मूँद लेता। कृष्ण अपने प्रिय-सखाओं के ऐसे व्यवहारों से अत्यन्त सुख का अनुभव करते थे।

इन समस्त प्रिय सखाओं में श्रीदामा प्रमुख माना जाता है। वह पीताम्बर धारण करता था, हाथ में शृंग-वाद्य रखता था और उसकी पगड़ी लाल ताम्र वर्ण की थी। उसके शरीर का रंग श्यामल था और वह गले में सुन्दर माला धारण करता था। वह हँसी-हँसी में कृष्ण को सदैव ललकारता था। हम श्रीदामा से प्रार्थना करते हैं कि वे हम पर अनुग्रह करें।

कभी-कभी श्रीदामा कृष्ण से कहा करता, "अरे, तुम इतने निर्दयी ठहरे कि हमें यमुना तट पर अकेले छोड़ आए और हम वहाँ तुम्हें न देखकर पागल हो गये। अब हमारा बड़भाग है कि तुम यहाँ दिख रहे हो। यदि तुम हमें शान्त करना चाहते हो तो हममें से हर एक को अपनी भुजाओं में भर कर आलिंगन करो। मित्र! विश्वास करो कि तुम्हारी एक क्षण की अनुपस्थिति भी न केवल हमें अपितु सारी गौवों को विह्वल कर देती है। सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है और हम तुम्हारे लिए पागल हो उठते हैं।"

कुछ अन्य मित्र भी हैं जो और अधिक विश्वस्त होते हैं। ये *प्रियनर्मा* कहलाते हैं। प्रियनर्मा मित्रों में सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त तथा उज्ज्वल के नाम गिनाये जा सकते हैं। एक बार राधारानी की गोपी-सखियों में इन अत्यन्त घनिष्ठ मित्रों के विषय में चर्चा चली तो एक गोपी ने राधारानी से कहा, "हे कृशांगी (सुकुमारी), देखो न, किस तरह सुबल कृष्ण के कानों में तुम्हारा सन्देश कह रहा है, किस तरह वह

श्यामादासी के गुप्त पत्र को कृष्ण के हाथों में दे रहा है; किस तरह वह पालिका द्वारा तैयार किये गये पान के बीड़े को कृष्ण के मुख में डाल रहा है और किस तरह वह तारका द्वारा तैयार की गई माला से कृष्ण को सजा रहा है। हे सखी! क्या तुम्हें पता है कि कृष्ण के ये सभी प्रियनर्मा मित्र सदैव इसी तरह उनकी सेवा में व्यस्त रहते हैं?'' अनेकानेक प्रियनर्माओं में सुबल तथा उज्ज्वल अग्रणी हैं।

सुबल के शरीर का वर्णन इस प्रकार है। उसका रंग पिघले सोने जैसा है। वह कृष्ण को अत्यधिक प्रिय है। वह सदैव अपने गले में माला पहने रहता है, और पीला वस्त्र धारण करता है। उसकी आँखें कमल की पंखड़ियों जैसी हैं और वह इतना बुद्धिमान है कि उसके अन्य सारे मित्र उसकी बातों में तथा उसके नैतिक उपदेशों में अत्यधिक रुचि दिखाते हैं। हम सभी कृष्ण के मित्र सुबल को सादर नमस्कार करते हैं। श्रीकृष्ण तथा सुबल की अन्तरंगता की मात्रा को इस बात से समझा जा सकता है कि उनके बीच जो बातें होतीं वे इतनी गोपनीय होतीं कि कोई भी यह न जान पाता कि वे क्या बातें कर रहे हैं।

कृष्ण के अन्य प्रियनर्मा मित्र उज्ज्वल का वर्णन इस प्रकार किया गया है। वह सदैव नारंगी रंग का वस्त्र धारण करता है और उसकी आँखों की गति सदैव अत्यन्त चंचल होती है। वह अपने शरीर को नाना प्रकार के पुष्पों से सजाता है और उसके शरीर का वर्ण कृष्ण जैसा ही है। उसके गले में सदैव मोती की माला पड़ी रहती है। वह कृष्ण को सदा अतिशय प्रिय है। हम कृष्ण के इस प्रियनर्मा उज्ज्वल की उपासना करते हैं।

उज्ज्वल की गुह्य सेवा के विषय में राधारानी द्वारा अपनी एक सखी से कहा गया यह कथन प्राप्त होता है, ''हे सखी! अब मेरे लिए अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना कठिन है। मैं तो कृष्ण से बात करने से बचना चाह रही थी, किन्तु देखो न! उनका मित्र उज्ज्वल फिर से मेरे पास चर्चा करने आ रहा है। उसकी नम्रोक्तियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि किसी भी गोपी के लिए कृष्ण-प्रेम से विरत हो पाना कठिन हो जाता है चाहे वह कितनी ही शर्मीली, गृहकार्यों में अनुरक्त तथा अपने प्रिय की विश्वसनीय क्यों न हो।''

उज्ज्वल के विनोदी स्वभाव का परिचायक यह कथन है ''हे कृष्ण! हे अघासुर के हन्ता! तुमने अपने प्रेम व्यापार को इतना विस्तृत बना दिया है कि तुम्हारी उपमा असीम सागर से दी जा सकती है। साथ ही पूर्ण प्रेमी की तलाश करने वाली संसार

की सारी युवतियाँ सागर में गिरने वाली नदियों के तुल्य हैं। ऐसी दशा में ये युवती-रूपी नदियाँ अपना पथ बदलने का प्रयास कर सकती हैं, किन्तु अन्त में उन्हें तुम्हारे पास ही आना होगा।''

कृष्ण के विभिन्न मित्रों में से कुछ का पता तो विभिन्न शास्त्रों से चलता है और कुछ का लोक-परम्परा से। कृष्ण के ये मित्र तीन प्रकार के हैं—कुछ तो कृष्ण के साथ नित्य मैत्री रखते हैं, कुछ विख्यात देवता हैं और कुछ सिद्ध भक्त हैं। इन तीनों प्रकारों में कुछ स्वभाव से कृष्ण की सेवा में स्थिर हैं और सदैव उन्हें मन्त्रणा देते हैं; उनमें से कुछ विनोदी हैं और अपने वचनों से कृष्ण को हँसाते हैं; उनमें से कुछ स्वभाव से अत्यन्त सरल हैं और अपनी सरलता से कृष्ण को प्रसन्न करते हैं; उनमें से कुछ अपने कार्यकलापों से कृष्ण के ही विरुद्ध लगने वाली अद्भुत परिस्थिति उत्पन्न करने वाले हैं; कुछ अत्यन्त बातूनी हैं और कृष्ण से सदैव तर्क-वितर्क करते रहते हैं और कुछ अत्यन्त सज्जन हैं तथा अपनी मधुर वाणी से कृष्ण को आनन्द प्रदान करते हैं। ये सारे मित्र कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं और वे अपने-अपने कामों में दक्षता प्रदर्शित करते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य सदैव कृष्ण को प्रसन्न करना रहता है।

अध्याय बयालीस

सख्य-प्रेम के व्यवहार

कृष्ण की आयु, उनका सौन्दर्य, उनका शृंग, उनकी वेणु, उनका शंख तथा उनकी मोहक मुद्रा—ये सभी उनके प्रति सख्य प्रेम उद्दीप्त करते है। कभी-कभी राजकुमार बनने या भगवान् बनने की उनकी अद्वितीय हासप्रियता भी भक्तों को उद्दीप्त करती है कि कृष्ण के प्रति सख्य प्रेम विकसित किया जाय।

विद्वानों ने कृष्ण की आयु के तीन विभाग किये हैं—प्रथम पाँच वर्ष तक *कौमार* , छठे वर्ष से दसवें वर्ष तक *पौगण्ड* तथा ग्यारह से पंद्रह वर्ष तक *कैशोर* । गोपकुमार के रूप में जीवनयापन करते हुए कृष्ण कौमार तथा पौगण्ड अवस्थाओं में रहते हैं। कैशोर-अवस्था में वे पहले ग्वालबाल के रूप में गोकुल में प्रकट हुए और जब सोलह वर्ष के हुए तो कंस का वध करने मथुरा चले गए।

कौमार-अवस्था माता यशोदा के साथ बाल प्रेम का आदान-प्रदान करने के लिए उपयुक्त है। *श्रीमद्भागवत* में (१०.१३.११) शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित से कहते हैं, "हे राजन! यद्यपि कृष्ण समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं तो भी वे अपने गोपमित्रों के साथ भोजन किया करते थे। इसका कारण यह है कि उस समय वे मुरली को अपनी काँख में रखते हुए तथा शृंग को अपने पट्टे में अपने दंड (बेत) सहित दाहिनी ओर लटकाते हुए एक सामान्य बालक की लीला करते थे। वे अपने बाएँ हाथ में दही-भात लिए और अँगुलियों में फलों के राजा पीलु को लटकाये रहते थे। इस तरह जब वे मित्रमंडली के बीच बैठते तो वे कमल फूल की कर्णिका जैसे लगते और उनके मित्र पंखड़ियों के समान उन्हें घेरे रहते। जब वे परस्पर हँसी-विनोद करते तो स्वर्ग के निवासी आश्चर्यचकित होकर इस दृश्य को देखते रह जाते।"

कृष्ण की पौगण्ड-अवस्था के भी तीन विभाग किये जा सकते हैं—प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त। पौगण्ड-अवस्था के आते ही उनके अधरों पर सुन्दर लालिमा आ जाती है, उनका उदर अत्यन्त क्षीण है और उनकी गर्दन पर शंख जैसी रेखाएँ हैं। कभी-कभी कुछ बाहरी दर्शक कृष्ण को देखने के लिए वृन्दावन लौट कर आते और उन्हें पुनः देखने पर पुकार उठते, "हे मुकुन्द! तुम्हारा सौन्दर्य क्रमशः बढ़ रहा है जैसे बरगद

के पेड़ की पत्ती बढ़ती है! हे राजीवलोचन! तुम्हारी गर्दन में शंख जैसी रेखाएँ प्रकट होने लगी हैं और शुभ्रज्योत्स्ना में तुम्हारे दाँत तथा कपोल सुव्यवस्थित पद्मराग मणियों से होड़ ले रहे हैं। मेरे विचार से तुम्हारा सुन्दर शारीरिक विकास तुम्हारे मित्रों को अब अत्यधिक आनन्द प्रदान कर रहा है।''

इस अवस्था में कृष्ण तरह-तरह की फूलमालाओं से सज्जित रहते थे। वे तरह-तरह के रंगों में रँगे रेशमी वस्त्र पहनते थे। ऐसे अलंकरण कृष्ण के प्रसाधन माने जाते हैं। जब कृष्ण गौवें चराने जंगल जाते उस समय वे ऐसे ही वस्त्र पहनते थे। कभी-कभी वे वहाँ अपने विभिन्न मित्रों से कुश्ती लड़ते थे और कभी-कभी सभी मिलकर जंगल में नृत्य करते थे। ये पौगण्ड-अवस्था की कुछ विशिष्ट क्रीड़ाएँ हैं।

कृष्ण के गोपमित्र उनकी मंडली में इतने प्रसन्न रहते कि वे अपनी दिव्य भावनाओं को अपने मन में इस प्रकार व्यक्त करते, ''हे कृष्ण! तुम सुन्दर वृन्दावन में सर्वत्र बिखरी गौवों को चराने में सदा व्यस्त रहते हो। तुम्हारे पास सुन्दर माला, एक छोटा सा शंख, पगड़ी पर एक मोर पंख, पीताम्बर, कानों में कर्णिकार फूलों के अलंकरण तथा वक्षस्थल पर मल्लिका के फूलों की माला रहती है। इस सुन्दर वेश में जब तुम अभिनेता की भाँति हमसे लड़ते हो तो इससे हमें असीम दिव्य आनन्द प्राप्त होता है।''

पौगण्ड की मध्यावस्था में जब कृष्ण कुछ बड़े हो जाते हैं, तो उनके नाखून अत्यन्त तेज हो जाते हैं, उनके कपोलों पर कान्ति आ जाती है और वे गोलमटोल लगने लगते हैं। उनकी कटि की दोनों ओर पट्टे के ऊपर सिलवट-युक्त त्वचा में तीन स्पष्ट रेखाएँ दिखती हैं जिन्हें *त्रिवली* कहते हैं।

कृष्ण के ग्वाल सखा उनकी संगति से गर्व का अनुभव करते। उस समय उनकी नाक का अग्रभाग तिल के फूल की सुन्दरता को और उनके गालों की कान्ति मोतियों की चमक को हराने वाली लगती तथा उनके शरीर के दोनों पक्ष अतीव सुन्दर लगते थे। इस अवस्था में कृष्ण बिजली की सी चमक वाले रेशमी वस्त्र पहनते थे; उनके सिर पर सुनहरे फीते से आच्छादित रेशमी पगड़ी रहती थी और वे अपने हाथ में लगभग छप्पन इंच (तीन हाथ) लम्बी लकुटी लिए रहते थे।* कृष्ण की इस अतीव

*इस काल की विशिष्ट लीलाएँ भाण्डीरवन में हुईं। यह भाण्डीरवन अन्य ग्यारह वनों के साथ आज भी वृन्दावन मंडल में स्थित है और सम्पूर्ण वृन्दावन क्षेत्र की परिक्रमा करने वाले भक्त आज भी इन वनों की सुन्दरता देख सकते है।

सुन्दर वेशभूषा को देख कर एक भक्त ने अपने मित्र से इस प्रकार कहा, ''हे मित्र! जरा कृष्ण को तो देखो! देखो न, वे किस तरह अपने हाथ में दोनों सिरों पर सुनहरे छल्लों से मढ़ी लकुटी लिये हैं! उनका सुनहरा फीतेदार साफा (पगड़ी) कितनी सुन्दर कान्ति फैला रहा है और उनकी वेशभूषा उनके मित्रों को किस तरह अतीव दिव्य आनन्द प्रदान कर रही है!''

पौगण्ड अवस्था के अन्त में कृष्ण के बाल कभी उनके कूल्हों तक लटकने लगते हैं तो कभी तितर-बितर हो जाते हैं। इस अवस्था में उनके दोनों कन्धे ऊँचे तथा चौड़े हो जाते हैं; उनका मुखमंडल सदैव तिलक के चिह्न से मंडित रहता है। जब उनके सुन्दर बाल उनके कंधों पर बिखर जाते हैं तो ऐसा लगता है मानो लक्ष्मी जी उनका आलिंगन कर रही हैं और इस आलिंगन से उनके मित्रों को अतीव आनन्द आता है। एक बार सुबल ने उन्हें इस प्रकार पुकारा, ''हे केशव! तुम्हारी गोल पगड़ी, तुम्हारे हाथ का कमल फूल, तुम्हारे मस्तक का खड़ा तिलक चिह्न, तुम्हारी कुंकुम सुरभित कस्तूरी और शरीर के सुन्दर अंग आज मुझे परास्त किये दे रहे हैं यद्यपि मैं तुमसे या अन्य मित्रों से अधिक बलवान हूँ। क्योंकि यह ऐसा है इसलिए कोई कारण नहीं कि तुम्हारे शरीर के ये गुण वृन्दावन की सभी युवतियों के गर्व को चूर न कर दें। यदि तुम्हारे सौन्दर्य से मैं पराजित हो गया हूँ तो बेचारी सरल तथा नम्र युवतियों की क्या दशा हो रही होगी?''

इस अवस्था में कृष्ण अपने मित्रों के कान में फुसफुसाते और उनकी बातों का विषय होता उन गोपियों की सुन्दरता जो उनके सामने खड़ी-खड़ी बाट जोहती रहतीं। सुबल ने एक बार कृष्ण से कहा, ''अरे कृष्ण! तुम बड़े चालाक हो। तुम अन्यों के मन की बातें जान सकते हो अतएव मैं तुम्हारे कान में बता रहा हूँ कि ये पाँचों सुन्दर गोपियाँ तुम्हारे वेश से आकृष्ट हो गई हैं और मेरा विचार है कि कामदेव ने उन्हें यह भार सौंप दिया है कि वे तुम पर विजय पा लें।'' दूसरे शब्दों में गोपियों की सुन्दरता कृष्ण को जीतने में सक्षम थी यद्यपि वे समस्त ब्रह्माण्डों के विजेता थे।

कैशोरावस्था का वर्णन पहले हो चुका है और यही वह अवस्था है जिसमें भक्तों को श्रीकृष्ण सर्वाधिक पसन्द आते हैं। राधारानी समेत कृष्ण की पूजा किशोर-किशोरी के रूप में की जाती है। कृष्ण की अवस्था इस कैशोरावस्था से आगे नहीं बढ़ती और *ब्रह्म-संहिता* में इसकी पुष्टि की गई है कि यद्यपि वे सबसे पुराने व्यक्ति (पुराण पुरुष) हैं और उनके असंख्य विविध रूप हैं, किन्तु इनका आद्य स्वरूप सदैव

तरुण रहता है। कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में कृष्ण के चित्रों में हम उन्हें तरुण पाते हैं यद्यपि इस अवस्था में उनके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र हो चुके थे। एक बार गोप सखाओं ने कृष्ण से कहा, "हे कृष्ण! तुम्हें अपने शरीर को इतने आभूषणों से सज्जित करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा दिव्य स्वरूप अपने आप में इतना सुन्दर है कि तुम्हें आभूषणों की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।" इस अवस्था में कृष्ण जब भी प्रात:काल अपनी वंशी बजाते तो उनके सारे मित्र बिस्तर छोड़ कर उनके साथ चरागाहों में जाने के लिए तैयार हो जाते। उनके मित्रों में से एक मित्र ने एक बार कहा, "हे गोपसखाओ! गोवर्धन पर्वत के ऊपर से आ रही कृष्ण की वंशी की ध्वनि बता रही है कि हमें उन्हें खोजने के लिए यमुना तट पर जाने की आवश्यकता नहीं है।"

शिवपत्नी पार्वती ने अपने पति शिवजी से कहा "हे पंचमुख! जरा इन पाण्डवों को तो देखो! कृष्ण के शंख पांचजन्य की ध्वनि सुनकर इन सबों ने फिर से बल प्राप्त कर लिया है और ये सिंहों के समान बन गये हैं।"

इस अवस्था में एक बार कृष्ण ने राधारानी की ही तरह वेश धारण कर लिया जिससे मित्रों में हास-परिहास हो। उन्होंने सोने के कुंडल पहन लिए और श्याम रंग होने के कारण उन्होंने अपने सारे शरीर में कुमकुम का लेप कर लिया जिससे वे राधा के ही समान सुंदर लगें। उन्हें इस वेश में देखकर कृष्ण का मित्र सुबल चकित रह गया।

कृष्ण कभी-कभी अपने मित्रों से अपनी भुजाओं से लड़ते या कुश्ती करते, कभी गेंद खेलते और कभी शतरंज खेलते। कभी-कभी वे एक-दूसरे को अपने कंधों पर उठा लेते और कभी-कभी वे लकड़ी के लट्ठों को घुमा कर अपना कौशल दिखलाते। कृष्ण के सारे गोपमित्र उनके साथ पलने के आसन पर या झूले में बैठ कर, बिस्तरों में साथ लेटकर, परस्पर हँसी विनोद करके तथा ताल में तैर कर उन्हें प्रसन्न करते। ये सारे कार्यकलाप *अनुभाव* कहलाते हैं। जब कभी सारे मित्र कृष्ण के साथ एकत्र होते तो वे तुरन्त इन कार्यों में, विशेषतया नृत्य में, लग जाते। उनकी कुश्ती के बारे में एक मित्र ने एक बार कृष्ण से पूछा, "हे मित्र! हे अघासुर के हन्ता! तुम अपने मित्रों के बीच गर्व-पूर्वक घूम-घूम कर अपनी बलिष्ठ भुजाएँ दिखा रहे हो। ऐसा तो नहीं है कि तुम मुझसे ईर्ष्या करते हो? मैं जानता हूँ कि तुम मुझे कुश्ती में हरा नहीं सकते और यह भी जानता हूँ कि तुम बड़ी देर से निठल्ले बैठे हो, क्योंकि तुम मुझे हराने में निराश हो चुके हो।"

कृष्ण के सारे के सारे मित्र अत्यन्त साहसी थे और वे किसी भी जोखिम में पड़ने को तैयार रहते थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि कृष्ण उन्हें सारे दुस्साहसों में विजयी बनने में सहायक होंगे। वे एकसाथ बैठकर एक-दूसरे को सलाह देते कि क्या किया जाय और कभी-कभी कल्याण-कार्य की ओर प्रवृत्त करते थे। कभी-कभी वे एक-दूसरे को पान सुपारी खिलाते, एक-दूसरे के मुखों पर तिलक लगाते या शरीरों पर चन्दन का लेप करते। कभी-कभी आमोद-प्रमोद के लिए वे अपने चेहरों को विचित्र तरीकों से सजाते। इन मित्रों का एक और भी काम होता था—सभी बारी-बारी से कृष्ण को हराने का प्रयास करते थे। कभी वे उनके वस्त्र, तो कभी उनके हाथों से फूल छीन लेते। कभी-कभी वे एक-दूसरे के शरीर को सज्जित करने के लिए प्रोत्साहित करते और ऐसा न करने पर एक-दूसरे को ललकार कर कुश्ती लड़ने के लिए तैयार हो जाते। ये कृष्ण तथा उनके मित्रों के कुछ सामान्य कार्यकलाप होते थे।

कृष्ण के मित्रों की एक अन्य महत्वपूर्ण लीला होती थी कि वे गोपियों का संदेश लाने तथा ले जाने का कार्य करते थे। वे कृष्ण से गोपियों का परिचय कराते और उनका पक्ष-समर्थन करते। जब ये गोपियाँ कृष्ण से रूठतीं तो ये मित्र कृष्ण की उपस्थिति में तो कृष्ण का पक्ष लेते, किन्तु जब कृष्ण उपस्थित नहीं होते तो वे गोपियों का पक्ष लेते थे। इस तरह कभी एक पक्ष का और कभी दूसरे पक्ष का समर्थन करते हुए वे गुप्त बातें करते और कानों में फुसफुसाते यद्यपि ऐसा कोई कार्य गम्भीर रूप से नहीं होता था।

कृष्ण के दास (अनुग) कभी-कभी उनके लिए फूल चुनते, उनके शरीर को कीमती तथा साधारण आभूषणों से सजाते, उनके समक्ष नाचते-गाते, गायों के चराने में सहायता करते, उनका शरीर दबाते, उनके लिए फूल की मालाएँ बनाते और कभी-कभी पंखा झलते। कृष्ण के अनुगों के ये प्रमुख कार्य होते थे। कृष्ण के मित्र तथा अनुग मिलकर उनकी सेवा करते। उनके ये सारे कार्य *अनुभाव* कहलाते हैं।

जब कृष्ण कालिय नाग को दण्ड देकर यमुना से बाहर निकले तो सर्वप्रथम श्रीदामा ने उनका आलिंगन करना चाहा किन्तु आदर भाव के कारण उसके हाथ ही नहीं उठ पाये।

जब कृष्ण अपनी वंशी बजाते तो ऐसा लगता मानो स्वाति नक्षत्र में आकाश में मेघों की गर्जना हो। वैदिक ज्योतिष गणना के अनुसार यदि स्वाति नक्षत्र में वर्षा हो तो समुद्र में गिरने वाली बूँद मोती उत्पन्न करती है और सर्प पर गिरने वाली बूँद मणि

उत्पन्न करती है। उसी प्रकार जब स्वाति नक्षत्र में मेघगर्जना के समान कृष्ण की वंशी निनादित होती तो श्रीदामा के शरीर पर पसीने की बूँदें मोती जैसी प्रतीत होतीं।

जब कृष्ण तथा सुबल परस्पर आलिंगन कर रहे थे तो श्रीमती राधारानी को कुछ ईर्ष्या हुई और वे अपने क्रोध को छुपा कर बोलीं, "हे सुबल! तुम बड़े भाग्यशाली हो, क्योंकि गुरुजनों की भी उपस्थिति में तुम और कृष्ण एक-दूसरे के गले में अपनी बाँहें डाल सकते हो। मैं सोचती हूँ कि तुमने अपने पूर्वजन्मों में अनेक तपस्याओं में सफलता प्राप्त की है।" भाव यह है कि राधारानी कृष्ण के गले में बाँहें डालती तो थीं किन्तु अपने गुरुजनों के समक्ष वे ऐसा नहीं कर पाती थीं जब कि सुबल खुले रूप में ऐसा कर सकता था। इसीलिए राधारानी ने उसके भाग्य की सराहना की।

जब कृष्ण *कालियदह* में प्रविष्ट हुए तो कृष्ण के घनिष्ठ सखागण इतने उद्विग्न हो उठे कि उनके शरीर का रंग उड़ गया और सभी घिघियाने लगे। उस समय वे सभी मूर्छित-प्राय होकर भूमि पर गिर पड़े। उसी प्रकार जब दावाग्नि लगी थी तो कृष्ण के सारे मित्रों ने अपनी रक्षा की परवाह न करते हुए कृष्ण को लपटों से बचाने के लिए उन्हें चारों ओर से घेर लिया। कृष्ण के प्रति उनके मित्रों के इस व्यवहार को भावुक कवियों ने *व्यभिचारी* कहा है। कृष्ण के व्यभिचारी भावों में कभी-कभी उन्माद, दक्षता, भय, आलस्य, हर्ष, गर्व, चक्कर आना, ध्यान, व्याधि, विस्मृति और दैन्य देखे जाते हैं। ये सब श्रीकृष्ण के व्यभिचारी भाव के कुछ सामान्य लक्षण हैं।

जब कृष्ण तथा उनके मित्रों के पारस्परिक आचरणों में आदर की भावना नहीं रहती और वे एक-दूसरे के साथ समान स्तर पर व्यवहार करते हैं तो यह सख्य भाव *स्थायी* कहलाता है। जब कोई कृष्ण के साथ इस प्रिय सख्य भाव से जुड़ा होता है तो उसमें आकर्षण, स्नेह, अनुराग तथा आसक्ति जैसे प्रेम के लक्षण देखे जाते हैं। स्थायी का उदाहरण तब प्रकट हुआ जब अर्जुन ने (यह अर्जुन वृन्दावनवासी है और *भगवद्गीता* के अर्जुन से भिन्न है) अक्रूर से कहा "हे गान्दिनीसुत! कृपया कृष्ण से यह पूछें कि मैं कब उन्हें अपनी बाहों में भर कर आलिंगन कर सकूँगा।"

जब कृष्ण की श्रेष्ठता का ज्ञान होते हुए भी मैत्रीभाव से आचरण करते समय आदरभाव का सर्वथा अभाव हो तो उस भाव को स्नेह कहते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहारण इस प्रकार है। जब शिव आदि देवता कृष्ण की सादर स्तुति करते हुए भगवान् के ऐश्वर्यों का वर्णन कर रहे थे तो वृन्दावनवासी अर्जुन उनके समक्ष खड़ा होकर उनके कंधों पर हाथ रखकर उनके मोर पंख की धूल झाड़ रहा था।

जब दुर्योधन ने पाण्डवों को बनवास देकर उन्हें अज्ञातवास करने के लिए बाध्य कर दिया तो कोई भी पता न लगा सका कि वे कहाँ रह रहे हैं। उस समय महर्षि नारद ने कृष्ण से भेंट की और कहा, "हे मुकुन्द! यद्यपि आप भगवान् सर्वशक्तिमान् पुरुष हैं, किन्तु आपके साथ मित्रता करने के कारण पाण्डवों को विश्व के साम्राज्य पर शासन करने के वैधिक अधिकार से वंचित कर दिया गया है और अब वे अज्ञातवास कर रहे हैं। हो सकता है उन्हें कभी किसी के घर में साधारण नौकरों की तरह काम करना पड़े। ये लक्षण भौतिक दृष्टि से बड़े अशुभ लगते हैं, किन्तु खूबी यह है कि इन कष्टों के रहते हुए भी पाण्डवों ने आपके प्रति श्रद्धा एवं प्रेम का परित्याग नहीं किया। तथ्य तो यह है कि वे आपको सख्य-भाव से स्मरण करते हुए आपके नाम का जप करते रहते हैं।"

कृष्ण के प्रति उत्कट स्नेह का अन्य उदाहरण *श्रीमद्भागवत* में (१०.१५.१८) पाया जाता है। चरागाह में कृष्ण को कुछ थकान अनुभव हुई तो वे आराम करने के उद्देश्य से भूमि पर लेट गये। उस समय वहाँ अनेक ग्वालबाल एकत्र हो गये और बड़े ही स्नेह से उपयुक्त गीत गाने लगे जिससे कृष्ण ठीक से आराम कर सकें।

कृष्ण तथा अर्जुन की मैत्री का उत्तम उदाहरण कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में मिलता है। जब युद्ध चल रहा था तो द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अनुचित ढंग से कृष्ण पर आक्रमण कर दिया, यद्यपि तत्कालीन युद्ध-नियमों के अनुसार सारथी पर आक्रमण कभी नहीं किया जाना चाहिए। अश्वत्थामा का आचरण कई प्रकार से इतना जघन्य था कि उसने कृष्ण के शरीर पर वार करने में संकोच नहीं किया, यद्यपि कृष्ण अर्जुन का रथ हाँक रहे थे। जब अर्जुन ने देखा कि अश्वत्थामा नाना प्रकार के बाणों से कृष्ण को चोट पहुँचा रहा है तो वह उन बाणों को रोकने के लिए तुरन्त कृष्ण के आगे खड़ा हो गया। उस समय यद्यपि उन बाणों से अर्जुन घायल हो रहा था, किन्तु उसे कृष्ण के प्रति प्रेम था, अतएव उसे ये बाण फूलों की वर्षा के समान लग रहे थे।

कृष्ण के सख्य भाव का एक अन्य उदाहरण है। एक बार वृषभ नामक गोपकुमार कृष्ण के लिए फूल की माला बनाने हेतु जंगल में फूल चुन रहा था। उस समय सूर्य अपनी पराकाष्ठा पर था और प्रखर धूप थी, किन्तु वृषभ को वह धूप चाँदनी सी शीतल लग रही थी। भगवान् की प्रेमा-भक्ति करने का यही ढंग है। जब भक्तों को अतीव कठिनाई होती है—चाहे पांडवों जैसी ही क्यों न हों, जैसा कि वर्णन किया जा चुका है—तो वे भगवान् की सेवा करने के लिए इन कष्टों को परम सुविधाएँ मानते हैं।

कृष्ण के साथ अर्जुन की मित्रता का अन्य उदाहरण कृष्ण को यह स्मरण दिलाते हुए नारद जी ने प्रस्तुत किया, ''जब अर्जुन बाण विद्या सीख रहा था तो वह आपसे कई दिनों तक नहीं मिल पाया। किन्तु जब आप वहाँ पहुँच गये तो उसने सारा कार्य बन्द करके तुरन्त आपका आलिंगन किया।'' इसका भाव यह है कि यद्यपि अर्जुन सैन्य कला सीखने में व्यस्त था, किन्तु वह कृष्ण को एक क्षण भर के लिए भी नहीं भूला था; अतएव ज्यों ही कृष्ण के दर्शन का अवसर मिला तो उसने तुरन्त उनका आलिंगन कर लिया।

एक बार कृष्ण के एक सेवक पत्री ने उनसे इस प्रकार कहा ''हे प्रभु! आपने ग्वालबालों को अघासुर की क्षुधा से बचाया और कालियनाग के विषैले प्रभाव से उनकी रक्षा की। आपने उन्हें भयानक दावाग्नि से भी उबारा। किन्तु मैं आपके वियोग से पीड़ित हूँ जो अघासुर की भूख, कालियदह के विष तथा दावाग्नि से कहीं अधिक उग्र है। अतएव आप मुझे विरह की ज्वाला से क्यों नहीं बचा रहे हैं?''

एक बार एक अन्य मित्र ने कृष्ण से कहा, ''हे कंसारि! जब से आप हमसे विलग हुए हैं तब से हमारे विरह का ताप अधिक उग्र हो गया है। यह ताप तब से और भी भीषण लगता है जब से हमें यह पता चल गया है कि आप भाण्डीरवन में भानुतनया (राधारानी) नामक शीतल नदी की लहरों से शीतल हो रहे हैं।'' सारांश यह है कि जब कृष्णजी राधारानी के साथ व्यस्त थे तो सुबल आदि ग्वालबालों को उनका परम विरह सताने लगा और यह उनके लिए असह्य हो रहा था।

एक अन्य मित्र ने कृष्ण से इस प्रकार कहा, ''हे कृष्ण! हे अघासुर के हन्ता! जब आपने मथुरा में कंस का वध करने के लिए वृन्दावन छोड़ा तो सारे ग्वालबाल अपने चार *भूतों* (क्षिति, जल, पावक तथा गगन) से विहीन हो गये थे और उनका पाँचवाँ *भूत* वायु उनके नथुनों से तेजी से बह रहा था।'' जब कृष्ण राजा कंस का वध करने मथुरा चले गये तो सारे ग्वालबाल उनके वियोग से इतने पीड़ित हुए कि मृतप्राय हो गये। जब कोई व्यक्ति मरता है तो कहा जाता है कि उसने पाँच *भूत* (तत्त्व) त्याग दिये हैं, क्योंकि शरीर पुन: उन पाँच तत्त्वों में मिल जाता है जिनसे वह निर्मित हुआ था। इस प्रसंग में, यद्यपि चार तत्त्व—क्षिति, जल, पावक तथा आकाश—पहले ही निकल चुके थे, किन्तु शेष पाँचवां तत्त्व जो कि वायु है अब भी तेजी से नथुनों में चल रहा था। दूसरे शब्दों में, जब से कृष्ण ने वृन्दावन छोड़ा तब से सारे ग्वालबाल सदैव चिन्तित रहते कि कंस के साथ युद्ध में न जाने क्या हो जाय।

एक अन्य मित्र ने कृष्ण को एक बार सूचना दी, ''जब आपके एक मित्र को आपका विरह बहुत सता रहा था तो उसके कमलनेत्रों में आँसू आ गये थे जिससे निद्रा रूपी काले भौंरे उनके नेत्रों में प्रविष्ट न हो सकने के कारण निरुत्साहित होकर वहाँ से उड़ गये।'' भौंरे कमल के फूलों पर आकर मधु एकत्र करते हैं। कृष्ण के मित्र की आँखें कमल जैसी थीं और चूँकि वे आँसुओं से पूर्ण थीं इसलिए भौंरे उनके कमलनेत्रों से मधु संचय नहीं कर पाये, अतएव वहाँ से चले गये। दूसरे शब्दों में, अत्यधिक संतप्त होने के कारण, मित्र की आँखों में आँसू भरे थे जिससे वह सो नहीं पाया। यह कृष्ण के विरह के कारण रातभर जगे रहने का उदाहरण है।

असहायपन का उदाहरण इस कथन में मिलता है, ''कृष्ण के वृन्दावन से मथुरा चले जाने से कृष्ण के सर्वप्रिय गोपमित्रों के चित्त हल्के हो गये। वे रुई के टुकड़ों की तरह, हवा से हल्के होने के कारण बिना किसी आश्रय के वायु में तैर रहे थे।'' दूसरे शब्दों में, कृष्ण के वियोग से ग्वालबालों के मन प्राय: शून्य हो गये। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर भी इन ग्वालबालों ने अधैर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया था। वे गोपकुमार विरह के दुख के कारण गौवों को चराना भूल गये और वे उन सारे मधुर गीतों को भुला देना चाहते थे जिन्हें वे चरागाहों में गाया करते थे। अन्त में कृष्ण से विलग होने के कारण वे और अधिक जीना नहीं चाह रहे थे।

स्तब्धता या जड़ता का उदाहरण कृष्ण के मित्र द्वारा किये गये वर्णन में मिलता है जिसने उन्हें मथुरा में बतलाया कि सभी ग्वालबाल पर्वत के ऊपर के पर्णविहीन वृक्षों के समान दिखते हैं। वे कृशकाय होने के कारण नग्न-प्राय लग रहे थे और उनमें न तो कोई फल थे न फूल। उसने कृष्ण को सूचित किया कि वृन्दावन में रहने वाले ग्वालबाल पर्वतों के शिखर पर के वृक्षों जैसे स्तब्ध लग रहे थे। कभी-कभी वे कृष्ण के इस वियोग से रुग्ण लगते और अत्यधिक निराश होने के कारण निरुद्देश्य होकर यमुना के तट पर विचरण करते थे।

कृष्ण के वियोग से उत्पन्न उन्माद का भी एक उदाहरण मिलता है। जब कृष्ण वृन्दावन में उपस्थित नहीं थे तो सारे ग्वालबाल मोहग्रस्त हो गये और अपने सारे कार्यों को त्याग कर उन्मत्त से हो गये। वे अपना नियमित कामकाज भूल गये। वे कभी भूमि पर लेट जाते, कभी धूल में लोट जाते, कभी हँसते और कभी तेजी से दौड़ने लगते। इन सब लक्षणों से वे उन्मत्त जैसे लगते। कृष्ण के एक मित्र ने उनकी आलोचना यह कहकर की ''हे प्रभु! आप कंस का वध करके मथुरा के राजा बन गये हैं; यह हमारे

लिए शुभ समाचार है। किन्तु वृन्दावन के सारे वासी आपकी अनुपस्थिति के कारण निरन्तर रोते रहने से लगभग अन्धे हो गए हैं। वे केवल चिन्ताओं से पूर्ण हैं और आपके मथुरा नरेश होने से उन्हें तनिक भी हर्ष नहीं होता।''

कभी-कभी कृष्ण के वियोग से मृत्यु के भी चिह्न प्रकट होते थे। एक बार कृष्ण से कहा गया, ''हे कंस के संहर्ता! ग्वालबाल आपके वियोग के कारण बहुत कष्ट भोग रहे हैं और अब वे घाटियों में लेटे हैं और उनकी श्वास धीरे-धीरे चल रही है। इन बालकों की दयनीय दशा पर सहानुभूति प्रकट करते हुए वन के मृग तक आँसू बहा रहे हैं।''

स्कन्द-पुराण के *मथुरा-खण्ड* में कृष्ण तथा बलराम का वर्णन आता है जिसमें वे ग्वालबालों से घिरे रह कर सदैव गायों तथा बछड़ों की देखभाल करने में व्यस्त रहते हैं। जब द्रुपदनगर में अर्जुन से कृष्ण की भेंट कुम्हार की दुकान पर हुई तो दोनों के शारीरिक स्वरूप में इतनी समानता दिखी कि वे घनिष्ठ मित्र बन गये। यह समान शरीरों के आकर्षण से जनित मैत्री का उदाहरण है।

श्रीमद्भागवत में (१०.७१.२७) उल्लेख है कि जब कृष्ण इन्द्रप्रस्थ नगरी में पधारे तो भीम की आँखों में हर्षातिरेक से अश्रु आ गये और उसने हँसते हुए अपने ममेरे भाई का तुरन्त आलिंगन किया। उसके पीछे उसके छोटे भाई नकुल, सहदेव तथा अर्जुन थे और वे सभी कृष्ण को देख कर इतने अभिभूत थे कि प्रसन्नता से उन्होंने भगवान् अच्युत का आलिंगन किया। इसी प्रकार का कथन वृन्दावन के ग्वालबालों के बारे में मिलता है। जब कृष्ण कुरुक्षेत्र के मैदान में थे तो सारे ग्वालबाल अपने-अपने कानों में रत्नजटित कुण्डल पहन कर उनसे मिलने आये। वे प्रसन्नता से इतने गद्गद् हो उठे कि अपनी बाहें फैलाकर अपने पुराने मित्र कृष्ण का आलिंगन करने लगे। ये कृष्ण के साथ मैत्री में पूर्ण तुष्टि के उदाहरण हैं।

श्रीमद्भागवत में (१०.१२.१२) कहा गया है कि बड़े-बड़े योगी कठिन तपस्या तथा योग साधना के बाद भी मुश्किल से कृष्ण के चरणों की धूल प्राप्त करने के पात्र बन पाते हैं, किन्तु वही कृष्ण वृन्दावनवासियों के लिए सहज ही दृष्टिगोचर हैं। इसका अर्थ यह है कि इन भक्तों के सौभाग्य की तुलना नहीं की जा सकती। कृष्ण के साथ ग्वालबालों का मैत्री-सम्बन्ध विशिष्ट प्रकार का अनुभाव है जो माधुर्य भाव जैसा है। ग्वालबालों और कृष्ण के मध्य इस अनुभाव का वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन है।

श्रील रूप गोस्वामी जैसे अतीव दक्ष भक्त कृष्ण तथा उनके ग्वालबाल मित्रों के अचिन्त्य भावों पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं।

कृष्ण तथा उनके प्रियनर्मा मित्रों द्वारा आस्वादनीय विशेष अनुभाव आगे बढ़कर वात्सल्य प्रेम के रूप में और फिर वहाँ से माधुर्य प्रेम में विकसित होता है, जो श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तों के बीच का सर्वोच्च रस है।

अध्याय तैतालीस

वात्सल्य

जब प्रेम का भाव विकसित होकर वात्सल्य सम्बन्ध का रूप धारण कर लेता है और स्थायी हो जाता है तो यह सम्बन्ध *वात्सल्य रस* कहलाता है। इस वात्सल्य रस के स्तर का प्रदर्शन कृष्ण के उन भक्तों के साथ व्यवहारों में पाया जा सकता है जो पिता, माता तथा शिक्षक (गुरु) जैसे गुरुजनों के रूप में होते हैं।

विद्वानों ने कृष्ण के प्रति उस वात्सल्य प्रेम के उद्दीपनों का वर्णन इस प्रकार किया है जो उनसे सम्बन्ध रखने वाले गुरुजनों (वयोवृद्धों) में पाया जाता है। नन्द महाराज की प्रिय पत्नी यशोदा ने उन भगवान् को देखा जिनके शरीर का रंग नवविकसित नीलकमल के फूल के समान है, जिनका शरीर अत्यन्त कोमल है और जिनके कमलनेत्र भौंरों जैसे श्याम बिखरे बालों से घिरे हैं जब वे वृन्दावन की गलियों में विचर रहे थे। उन्हें देखते ही माता के स्तनों से दूध बहने लगा जिससे उनका सारा शरीर भीग गया।" श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम के कुछ विशिष्ट उद्दीपक इस प्रकार हैं— उनके शरीर का श्याम रंग जो अत्यन्त आकर्षक तथा देखने में सुहावना है, उनका सर्वमंगलमय स्वरूप, उनकी मृदुता, उनकी मधुर वाणी, उनकी सरलता, उनकी लज्जा, उनकी नम्रता, गुरुजनों का सम्मान करने की स्थायी भावना तथा उनकी दानशीलता। ये सारे गुण वात्सल्य प्रेम के उद्दीपन माने जाते हैं।

श्रीमद्भागवत में (१०.८.४५) शुकदेव गोस्वामी कहते हैं कि माता यशोदा ने कृष्ण को अपने पुत्र-रूप में स्वीकार किया, यद्यपि वेदों में इन्हें स्वर्ग का राजा, उपनिषदों में निर्विशेष ब्रह्म, दर्शन में परम पुरुष, योगियों के द्वारा परमात्मा और भक्तों के द्वारा भगवान् माना गया है। एक बार माता यशोदा ने अपनी सखी से इस प्रकार कहा, "ग्वालों के नायक नन्द महाराज ने मेरे साथ भगवान् विष्णु की पूजा की। इस पूजा के फलस्वरूप कृष्ण पूतना तथा अन्य असुरों के चंगुल से बचे हैं। यद्यपि यमलार्जुन वृक्ष निस्सन्देह तेज आँधी के कारण टूटे थे और यद्यपि ऐसा माना जाता है कि कृष्ण ने बलराम के साथ गोवर्धन पर्वत को उठाया था किन्तु मैं सोचती हूँ कि वास्तव में नन्द महाराज ने पर्वत को धारण किया था। अन्यथा उस छोटे से बालक

के लिए इतना बड़ा पर्वत उठा पाना सम्भव कैसे होता?'' यह वात्सल्य रस का दूसरा उदाहरण है। इस प्रकार का वात्सल्य-प्रेम भक्त में इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि वह स्वयं कृष्ण से अधिक आयु का है और यदि वह उसकी देखभाल न करे तो कृष्ण का रहना मुश्किल हो जाय। इसीलिए एक भक्त ने कृष्ण के माता-पिता से इस प्रकार प्रार्थना की, ''मैं कृष्ण के वयोवृद्ध वत्सल भक्तों की शरण लेता हूँ। वे सदैव कृष्ण की सेवा करने और उनका लालन-पालन करने के लिए आतुर रहते हैं और वे उनके प्रति सदा अत्यन्त दयालु रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पिता-स्वरूप भगवान् के प्रति इतने दयालु होने के कारण हम उन भक्तों को सादर प्रणाम करते हैं।''

एक ऐसी ही प्रार्थना में एक ब्राह्मण कहता है ''जो लोग वेदों और उपनिषदों की पूजा करते हैं वे करें और अन्य जो इस संसार से भयभीत हैं तथा भवबन्धन से छूटना चाहते हैं वे महाभारत की पूजा करें। लेकिन मैं तो केवल नन्द महाराज की पूजा करना चाहता हूँ, क्योंकि उन्हीं के आँगन में भगवान् उनके पुत्र-रूप में घुटनों के बल सरक रहे हैं।''

कृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम रखने वाले सम्माननीय व्यक्तियों की सूची इस प्रकार है—(१) व्रजरानी माता यशोदा २) व्रजराज महाराज नन्द ३) बलराम की माता रोहिणी ४) वे सभी वयोवृद्ध गोपिकाएँ जिनके पुत्रों को ब्रह्माजी चुरा ले गये थे ५) वसुदेव की पत्नी देवकी ६) वसुदेव की अन्य १५ पत्नियाँ ७) अर्जुन की माता कुन्ती ८) कृष्ण के असली पिता वसुदेव ९) कृष्ण के गुरु सान्दीपनि मुनि। इन सबों को सम्माननीय वयोवृद्ध व्यक्ति माना जाता है जिन्हें कृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम है। यह सूची श्रेष्ठता के क्रम के अनुसार है, अतएव हम देख सकते हैं कि सभी वयोवृद्ध व्यक्तियों में माता यशोदा तथा नन्द महाराज का नाम सर्वोपरि है।

श्रीमद्भागवत में (१०.९.३) शुकदेव गोस्वामी माता यशोदा के रूप और सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाराज परीक्षित से कहते हैं, ''हे राजन्! माता यशोदा के भारी नितम्ब रेशमी वस्त्रों से आच्छादित थे और उनके स्तनों से स्नेह के कारण दूध बह रहा था। जब वे मक्खन मथ रही थीं और रस्सी को जोर से पकड़े थीं तो उनके हाथ के कंगन तथा कानों के कुण्डल हिल रहे थे तथा उनके केशविन्यास से फूल ढीले हो कर गिर रहे थे। अत्यधिक श्रम करने के कारण उनके मुख पर पसीने की बूँदें आ गई थीं।''

एक भक्त की प्रार्थना में माता यशोदा का एक अन्य वर्णन प्राप्त होता है ''वे माता यशोदा मेरी रक्षा करें जिनके घुँघराले केश डोरे से बँधे हैं, जिनकी माँग में सिन्दूर शोभायमान है और जिनके शरीर की बनावट सारे आभूषणों को मात करती है। उनकी आँखें सदैव कृष्ण के मुख को निहारती रहती हैं अतएव वे सदैव अश्रुपूरित रहती हैं। उनका नीले कमल जैसा रंग नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों को धारण करने से अधिक सुन्दर लगने लगता है। उनकी कृपादृष्टि हम पर हो जिससे हम माया के चंगुल से बचकर भक्ति में सहज भाव से आगे बढ़ सकें।''

कृष्ण के प्रति माता यशोदा के वात्सल्य (स्नेह) का निम्नलिखित वर्णन मिलता है। प्रात:काल जल्दी जगने के बाद माता यशोदा सर्वप्रथम कृष्ण को अपना दूध पिलाती थीं और तब वे कृष्ण की रक्षा के लिए अनेक मन्त्रों का जप करती थीं। फिर वे उनके मस्तक को भलीभाँति सजातीं और उनकी बाहों में रक्षक ताबीज बाँध देतीं। इन कार्यों से यह जाना जा सकता है कि वे कृष्ण के प्रति समस्त मातृ-स्नेह की प्रतीक हैं।

नन्द महाराज के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार हुआ है। उनके सिर के बाल सामान्यतः काले हैं, किन्तु कुछ-कुछ श्वेत हैं। उनका वस्त्र हरे रंग का है मानो वट वृक्ष की नवीन कोपलें हों। उनका पेट तुन्दिल है, रंग पूर्ण चन्द्रमा के समान और मूँछें सुन्दर हैं। एक दिन, जब कृष्ण छोटे थे और आँगन में अपने पिता की अंगुली पकड़ कर चल रहे थे तो ठीक से न चल पाने के कारण ऐसा लगा कि वे गिरने वाले हैं। जब नन्द महाराज अपने दिव्य पुत्र को इस तरह सहारा दे रहे थे तो सहसा उनके नेत्रों में आँसू आ गये और वे हर्ष से गद्गद् हो उठे। हम उन नन्द महाराज के चरणकमलों को सादर नमस्कार करते हैं।

बाल्यकाल की आयु, बालक की वेशभूषा, बालक की चेष्टाएँ, बालक की मीठी बातें, मृदु हास तथा विभिन्न प्रकार की बाल क्रीड़ाएँ कृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम को उद्दीप्त करने वाली हैं। कृष्ण की कौमारावस्था तीन कालों में विभाजित की जाती है—आद्य कौमारावस्था, मध्य कौमारावस्था तथा शेष कौमारावस्था। आद्य तथा मध्य कौमारावस्था में कृष्ण की जाँघें मोटी तथा आँखों का भीतरी भाग श्वेताभ रहता है। उनके दाँत निकलते प्रतीत होते हैं ओर वे मृदु तथा भद्र लगते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''जब कृष्ण के मसूड़ों से केवल तीन या चार दाँत निकले थे तो उनकी जाँघें मोटी थीं, उनका शरीर अत्यन्त लघु था और वे अपनी बाल-क्रीड़ाओं से नन्द

महाराज तथा माता यशोदा के वत्सल-प्रेम को बढ़ाने लगे थे। कभी वे बार-बार डग भरते, कभी रोते, कभी हँसते, कभी अँगूठा चूसते और कभी चित्त लेटे होते। ये शिशु कृष्ण के कुछ विभिन्न कार्यकलाप थे। जब कृष्ण सीधे लेटे होते तो कभी वे अपने पाँव का अँगूठा चूसते, कभी पाँवों को ऊपर उठाते, कभी रोते और कभी हँसते और माता यशोदा अपने बेटे को ऐसी लीलाएँ करते देखकर उसे रोकती न थीं, अपितु अपने बालक को उत्सुकतापूर्वक निहारतीं और इन बाललीलाओं का आनन्द लेतीं।'' कृष्ण की आद्य कौमारावस्था में उनके गले में सोने के हार में जड़ा बघनखा पहनाया गया था। उनके माथे पर रक्षक तिलक था, आँखों में काजल और कमर में रेशमी धागा था। यह कृष्ण की आद्य कौमारावस्था की वेशभूषा का वर्णन है।

जब नन्द महाराज ने बाल कृष्ण को देखा कि उनके वक्षस्थल पर बघनखा, उनका वर्ण नवांकुरित तमाल वृक्ष के समान, गोमूत्र से बनाया गया सुन्दर तिलक, बाँह में सुन्दर रेशमी डोरा तथा कटि में रेशमी काछनी थी तो नन्द का मन बालक के सौन्दर्य से कभी तृप्त नहीं हुआ।

मध्य कौमार अवस्था में कृष्ण के बालों का अगला भाग उनकी आँखों पर आने लगा। कभी वे अपने शरीर के अधोभाग को वस्त्र से ढक लेते तो कभी वे बिल्कुल नंगे हो जाते। कभी वे एक-एक डग भर कर चलने का प्रयास करते और कभी तोतली भाषा में बोलते। ये उनकी मध्य कौमारावस्था के कुछ लक्षण हैं। एक बार जब माता यशोदा ने उन्हें इस मध्य कौमारावस्था में देखा तो उनका वर्णन इस प्रकार किया—उनके बिखरे बाल भौहों को छू रहे थे; उनके नेत्र चंचल थे, किन्तु वे अपनी भावनाएँ उचित शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहे थे; फिर भी जब वे बोलते तो उनकी बातें सुनने में मधुर और प्रिय लगतीं। जब माता यशोदा ने उनके छोटे-छोटे कानों को देखा और उन्हें छोटे-छोटे पाँवों से नंगे तेज दौड़ने का प्रयास करते देखा तो वे अमृत के सागर में मग्न हो गईं। इस आयु में कृष्ण अपनी नाक में मोती पहनते हैं, कमल जैसी हथेलियों में मक्खन लिये रहते हैं और उनकी कमर में क्षुद्र कंटिकाएँ लटकती रहती हैं। कहा गया है कि माता यशोदा ने जब नन्हें बालक को चलते-फिरते, उनकी कमर की घंटिकाओं को बजते, नाक में पहने मोती के साथ मन्द मुस्कान करते तथा हाथ में मक्खन लिये देखा तो उसे देखकर वे अत्यधिक प्रसन्न हुईं।

जब कृष्ण मध्य कौमारावस्था में थे तो उनकी कमर पतली हो गई, वक्षस्थल चौड़ा हो गया और उनके सिर के बाल घुँघराले हो गये मानो काकपक्ष हों। कृष्ण के

अद्भुत स्वरूप को देखकर यशोदा सदैव आश्चर्यचकित रह जातीं। कौमारावस्था के अन्त में कृष्ण अपने हाथ में छोटी लकुटी लेने लगे, उनके वस्त्र कुछ लम्बे हो गये और वे अपनी कमर में गाँठ लगाने लगे जो सर्प के फन जैसी प्रतीत होती थी। वे इस वेश में घर के पास बछड़ों की रखवाली करते थे और कभी-कभी समवयस्क ग्वालबालों के साथ खेला करते थे। उनके पास एक पतली सी वंशी और एक शृंग भी था। कभी-कभी वे वृक्ष की पत्तियों से बनाई गई वंशी भी बजाते थे। ये सब कृष्ण की कौमारावस्था के अन्तिम भाग के लक्षण हैं।

जब कृष्ण छोटे बछड़ों की रखवाली करते-करते कुछ बड़े हो गये तो वे प्राय: जंगल के निकट तक चले जाते थे। जब उन्हें लौटने में थोड़ी भी देरी हो जाती तो नन्द महाराज तुरन्त अपनी *चन्द्र-शालिका* (छत पर बनी छोटी सी अट्टालिका जहाँ से चारों ओर का दृश्य दिखाई पड़ता है) पर चढ़ जाते और उनकी राह देखते रहते। नन्द महाराज वहाँ से तब तक नहीं उतरते थे जब तक अपनी पत्नी को यह नहीं बता देते थे कि कृष्ण अपने ग्वाल मित्रों के साथ और बछड़ों के साथ वापस लौट रहे हैं। नन्द महाराज कृष्ण के सिर पर लगे मोर-पंख की ओर संकेत करते और अपनी प्रिय पत्नी को बताते कि वह बालक उनके नेत्रों को किस तरह मोह रहा है।

तब माता यशोदा नन्द महाराज से कहतीं, ''देखिये मेरे लाडले को! उसकी आँखें श्वेत हैं, उसके सिर पर पगड़ी है, उसके शरीर पर दुपट्टा है और उसके पाँव के नूपुर मधुर ध्वनि कर रहे हैं। वह अपने सुरभि बछड़ों के साथ निकट आ रहा है और देखिये न वह वृन्दावन की पवित्र भूमि में किस तरह विचरण कर रहा है!''

इसी प्रकार महाराज नन्द भी अपनी पत्नी से कहते, ''प्रिय यशोदे! अपने बेटे कृष्ण को तो देखो! उसकी श्यामल कान्ति, उसकी लाल लाल आँखें, उसके चौड़े वक्षस्थल तथा सुन्दर सुनहरे हार को तो देखो! वह कितना अद्भुत दिखता है और वह मेरे दिव्य आनन्द को किस तरह बढ़ाता जा रहा है!''

जब नन्द महाराज का लाडला पुत्र कृष्ण कैशोरावस्था में प्रवेश करता है तो यद्यपि वह अधिक सुन्दर लगने लगता है, किन्तु उसके माता-पिता उसे पौगंडावस्था में ही समझते हैं—यद्यपि वह अब १० से १५ वर्ष के बीच है। जब कृष्ण पौगंडावस्था में होते हैं तो उनके कुछ नौकर भी उन्हें कैशोरावस्था में ही समझते हैं। जब कृष्ण अपनी बाललीलाएँ करते हैं तो दूध तथा दही के मटके तोड़ना, दही को आँगन में फेंक देना और दूध की मलाई चुराना उनकी आम आदतें रहती हैं। कभी-कभी वे मथानी भी

तोड़ देते हैं और कभी-कभी तो वे मक्खन को आग में डाल देते हैं। इस तरह वे अपनी माता यशोदा के दिव्य आनन्द को बढ़ाते हैं।

इस सन्दर्भ में माता यशोदा ने एक बार अपनी दासी मुखरा से कहा, ''जरा कृष्ण को तो देखो! वह चारों ओर आँखें चुरा कर देखते हुए झाड़ी (कुंज) से धीरे-धीरे बाहर निकल रहा है। ऐसा लग रहा है मानो मक्खन चुराने आ रहा हो। अपने को प्रकट न करो अन्यथा वह समझेगा कि हम उसे देख रही हैं। मैं इस चालाकी से उसके भौंह मटकाने का आनन्द लेना चाहती हूँ और मैं उसकी भयभीत आँखें तथा सुन्दर चेहरा देखना चाहती हूँ।''

चुपके-चुपके मक्खन की चोरी करने की कृष्णलीला का आनन्द लेते समय माता यशोदा को कृष्ण का सिर सूँघने, कभी-कभी अपने हाथ से उसका शरीर थपथपाने, कभी आशीष देने, कभी आज्ञा देने, कभी उसे निहारने, कभी उसका लालन-पालन करने और कभी-कभी चोर न बनने की शिक्षा देने से मातृ-प्रेम उमड़ता। ऐसे कार्यकलाप मातृत्व प्रेम में होते हैं। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात दर्शनीय है कि चोरी करने की बाल-प्रवृत्ति भगवान् में भी है; अतएव यह प्रवृत्ति कृत्रिम नहीं है। किन्तु आध्यात्मिक सम्बन्ध होने पर इस चोरी की प्रवृत्ति में कोई उन्माद नहीं है जैसा कि भौतिक जगत में होता है।

श्रीमद्भागवत में (१०.१३.३३) शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित से कहते हैं, ''हे राजन! ज्योंही सयानी गोपियों ने अपने पुत्रों को आते देखा तो उनमें वात्सल्य प्रेम का अवर्णनीय चिह्न दिखने लगा और वे सब स्नेह में तल्लीन हो गईं। पहले तो वे मक्खन चुराने के लिए अपने पुत्रों को दण्ड देने की योजना बना रही थीं किन्तु जब उनके पुत्र उनके नेत्रों के समक्ष आ गये तो वे अपना सारा क्रोध भूल गईं और स्नेह से अभिभूत हो उठीं। वे अपने पुत्रों का आलिंगन करने और उनका सिर सूँघने लगीं। ऐसा करते हुए वे अपने पुत्रों के लिए प्रेमोन्मत्त जैसी हो उठीं।'' बाललीलाओं में ये सारे ग्वालबाल मक्खन चुराने में कृष्ण का साथ देते थे। किन्तु कृष्ण पर क्रुद्ध न होकर माता यशोदा के स्तनों से दूध की धार बहने लगी। कृष्ण के प्रति स्नेह के कारण वे बारम्बार उनका सिर सूँघने लगीं।

समस्त ग्वालबालों की माताओं द्वारा अपने बच्चों को चूमना, उन्हें गले लगाना, उनके नाम लेकर पुकारना तथा चोरी की आदत के लिए हल्की डाँट लगाना—ये उनके सामान्य कार्यकलाप थे। वात्सल्य प्रेम की ये अभिव्यक्तियाँ *सात्विक* भाव कहलाती हैं जिनमें आठ प्रकार के लक्षण देखे जाते हैं। *श्रीमद्भागवत* में (१०.१३.२२) शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को बतलाते हैं, ''सारे ग्वालबालों की माताएँ भगवान् की *योगमाया* शक्ति के आच्छादक प्रभाव से मोहित थीं; अतएव जैसे ही वे अपने बच्चों को वंशी बजाते सुनतीं वे तुरन्त उठ खड़ी होतीं और मन से अपने पुत्रों का आलिंगन करतीं, जिन्हें कृष्ण की प्रत्यक्ष अन्तरंगा शक्ति से निर्मित किया गया था। वे उन्हें अपना आत्मज मानकर उन्हें गोद में उठातीं और गले लगतीं और उनके शरीर से लिपट जातीं। इस घटना से उत्पन्न भावनाएँ अमृत के स्वादिष्ट नशे से भी मीठी होतीं और माताओं के स्तनों से बहते दूध को उनके बच्चे तुरन्त पी जाते।''

रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* में कृष्ण को इस प्रकार से सम्बोधित किया गया है ''हे कृष्ण! जब तुम पशुओं को चराते हो तो बछड़ों तथा गायों के खुरों से उठी धूल तुम्हारे सुन्दर मुख तथा कलात्मक तिलक को ढक लेती है जिससे तुम अत्यधिक धूलधूसरित लगते हो। किन्तु जब तुम घर लौटते हो तो तुम्हारी माता के स्तनों से निकला दूध तुम्हारे मुख की धूलि को धो डालता है और तुम इस दूध से उसी तरह शुद्ध हो जाते हो जिस तरह *अभिषेक* कराते समय अर्चाविग्रह शुद्ध हो जाता है।'' अर्चाविग्रह मन्दिरों में यह प्रथा है कि यदि कोई अशुद्ध कार्य हो जाता है तो अर्चाविग्रह का दूध से अभिषेक कराया जाता है। कृष्ण भगवान् हैं और उन्हें माता यशोदा के स्तनों के दूध से नहलाया गया जिससे वे धूल के आवरण से शुद्ध हो गये।

ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब माता यशोदा भाववश स्तम्भित हो जाती थीं। यह तब हुआ जब उन्होंने अपने पुत्र को गोवर्धन पर्वत उठाते देखा। जब कृष्ण पर्वत उठाये खड़े थे तो माता यशोदा को उनका आलिंगन करते हुए झिझक हुई और वे स्तम्भित हो गईं। कृष्ण ने पर्वत उठाकर जिस घातक अवस्था को बुला लिया था उससे यशोदा की आँखों में आँसू भर आये। नेत्रों के अश्रुपूरित होने से वे कृष्ण को देख नहीं सकीं और चूँकि चिन्ता से उनका गला रुँध गया था अतएव वे कृष्ण को यह भी नहीं बता पाईं कि उस स्थिति में वे क्या करें। यह प्रेम में स्तम्भित होने का लक्षण है।

कभी-कभी माता यशोदा को सुख की दिव्य अनुभूति होती थी, विशेषतया जब उनका बालक किसी घातक स्थिति से बच जाता था जैसे पूतना द्वारा या अन्य असुर द्वारा आक्रमण किया जाना। *श्रीमद्भागवत* में (१०.१७.१९) शुकदेव गोस्वामी कहते हैं कि जब यशोदा को उनका खोया बालक वापस मिल गया तो उन्होंने अपने को

परम धन्य माना। उन्होंने उसे तुरन्त अपनी गोद में उठा लिया और बारम्बार उसकी बलैयाँ लेने लगीं। जब वे इस तरह उसे बार-बार दुलार रही थीं तो उनकी आँखों से आँसू बह निकले जिससे वे अपने दिव्य हर्ष को व्यक्त न कर सकीं। श्रील रूप गोस्वामी *विदग्ध-माधव* में कहते हैं, "हे कृष्ण! तुम्हारी माता का स्पर्श इतना सुखद तथा शीतल है कि यह चन्दन के लेप और उशीर के लेप से मिश्रित शुभ्र चाँदनी की शीतलता को भी मात करने वाला है।" (*उशीर* एक प्रकार की जड़ है जिसमें पानी से भिगोने पर शीतलता प्रदान करने की शक्ति आ जाती है। इसे विशेषतया घोर गर्मी में प्रयुक्त किया जाता है।)

श्रीकृष्ण के लिए माता यशोदा का वात्सल्य प्रेम लगातार बढ़ता रहता है और उनके प्रेम तथा भाव को कभी-कभी प्रगाढ़ स्नेह तथा कभी-कभी अत्यधिक अनुरक्ति के रूप में वर्णित किया जाता है। अत्यधिक स्नेह सहित कृष्ण के प्रति अनुरक्ति का उदाहरण *श्रीमद्भागवत* में (१०.६.४३) प्राप्त होता है जहाँ शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से इस प्रकार कहते हैं "हे राजन! जब उदार-हृदय नन्द महाराज मथुरा से लौटे तो वे अपने पुत्र का सिर सूँघने लगे और वात्सल्य प्रेम में निमग्न हो गये।" इस सन्दर्भ में माता यशोदा का भी ऐसा ही कथन प्राप्त होता है जिसमें वे अपने पुत्र को चरागाह से लौटने की प्रतीक्षा करते हुए कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनने के लिए उत्सुक रहती है। चूँकि उन्होंने सोचा कि अधिक विलम्ब हो रहा है, अतएव कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनने की उनकी आतुरता द्विगुणित हो गई और उनके स्तनों से दूध बहने लगा। इस अवस्था में वे कभी घर के भीतर जातीं और कभी बाहर आतीं। वे लगातार निरखती रहतीं कि गोविन्द सड़क पर वापस आ रहा है या नहीं। जब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कृष्ण के कार्यों की प्रशंसा में स्तुति कर रहे थे तो गोकुल की रानी माता यशोदा अपने स्तनों से बहते दूध से अपनी साड़ी के अधोभाग को सिक्त किये कुरुक्षेत्र स्थल में प्रविष्ट हुईं। कुरुक्षेत्र युद्ध स्थल में यशोदा का पदार्पण युद्ध के दौरान नहीं हुआ था। अन्य अवसरों पर कृष्ण अपनी पितृ-भूमि (द्वारका) से सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र गये थे और उस समय वृन्दावन के वासी भी उन्हें देखने वहाँ पहुँचे थे।

जब कृष्ण तीर्थयात्रा में कुरुक्षेत्र पहुँचे तो वहाँ एकत्रित सारे लोग कहने लगे कि देवकीपुत्र कृष्ण आये हुए हैं। उस समय स्नेहमयी माता की भाँति देवकी कृष्ण के मुख पर हाथ फेरने लगीं। और पुनः जब लोग चिल्लाये कि वसुदेवपुत्र कृष्ण आये हैं तो नन्द तथा यशोदा दोनों ही स्नेहविभोर होकर परम प्रसन्नता व्यक्त करने लगे।

जब गोकुल की रानी माता यशोदा अपने पुत्र को कुरुक्षेत्र में देखने जा रही थीं तो उनकी एक सखी ने उनसे इस प्रकार कहा, "हे रानी! आपके स्तन-रूपी पर्वत से बहने वाले दूध ने पहले से गंगानदी को श्वेत बना दिया है और तुम्हारी आँखों के आँसुओं ने कज्जल से मिलकर यमुना के रंग को पहले से श्यामल बना डाला है। चूँकि आप दो नदियों के मध्य खड़ी हैं, अतएव आपको अपने पुत्र का मुख देखने के लिए उत्कंठित नहीं होना चाहिए। आपका वात्सल्य प्रेम इन दोनों नदियों के रूप में उन्हें पहले ही ज्ञात हो चुका है।"

माता यशोदा की इसी सखी ने कृष्ण से इस प्रकार कहा, "हे मुकुन्द! यदि गोकुल की रानी माता यशोदा को आग में भी खड़ा होना पड़े, किन्तु उन्हें तुम्हारा कमलमुख देखने दिया जाय तो वह अग्नि उन्हें हिमालय पर्वत जैसी शीतल लगेगी। इसी प्रकार यदि उन्हें अमृत के सागर में खड़ा कर दिया जाय, किन्तु तुम्हारे मुख का दर्शन न करने दिया जाय तो वह अमृत का सागर भी उन्हें संखिया विष के समुद्र जैसा लगेगा।" कृष्ण के कमलमुख के दर्शन की सदैव आशा लगाये हुई व्रज की रानी यशोदा की उत्कंठा की सारे विश्वभर में जय-जयकार हो।

ऐसा ही कथन अक्रूर के प्रति कुन्तीदेवी का है, "हे भ्राता अक्रूर! मेरा भतीजा मुकुन्द हम सबों से दीर्घकाल से दूर है। क्या आप कृपा करके उससे कह देंगे कि तुम्हारी बुआ कुन्ती शत्रुओं के बीच में है और यह जानने के लिए इच्छुक है कि तुम अपना कमलमुख कब दिखलाओगे?"

श्रीमद्भागवत में (१०.४६.२८) यह कथन आया है "जब उद्धव वृन्दावन में थे और कृष्ण के द्वारका के कार्यकलापों का वर्णन कर रहे थे तो यह वृत्तान्त सुनकर माता यशोदा के स्तनों से दूध और आँखों से अश्रु निकल आए।" कृष्ण के प्रति यशोदा के उत्कट प्रेम को बतलाने वाली एक अन्य घटना तब घटी जब कृष्ण कंस के राज्य मथुरा चले गये। कृष्ण के वियोग में माता यशोदा कृष्ण के शृंगार के बर्तनों को देखते हुए भूमि पर मूर्छित होकर धम्म से गिर पड़ीं। जब वे भूमि पर लोट रही थीं तो उनके शरीर में अनेक खरोंचें आ गईं और वे उस दयनीय अवस्था में चिल्लाने लगीं, "अरे मेरे बेटे! अरे मेरे बेटे!" वे अपनी छाती अपने हाथों से पीटने लगीं। माता यशोदा का यह कार्य दक्ष भक्तों के द्वारा वियोगजनित भाव कह कर वर्णित किया गया है। कभी-कभी अन्य अनेक लक्षण प्रकट होते हैं यथा महान् चिन्ता, शोक, निराशा, स्तंभ, दैन्य, अशान्ति, उन्माद तथा मोह।

जहाँ तक यशोदा की चिन्ता की बात है, जब कृष्ण घर से बाहर चरागाह गये थे तो एक बार एक भक्त ने उनसे कहा "हे यशोदा! मैं सोच रहा हूँ कि आप शिथिल हैं और मैं देख रहा हूँ कि आप चिन्ता से पूर्ण हैं। आपकी दोनों आँखें गतिहीन हो रही हैं और आपकी श्वास में गरमी है जिससे आपके स्तनों का दूध उबल रहा है। इन सभी दशाओं से सिद्ध होता है कि आपको अपने पुत्र-वियोग के कारण तीव्र शिरोवेदना है।" ये माता यशोदा के कुछ लक्षण हैं जो कृष्ण के लिए चिन्ता के कारण हैं।

जब अक्रूर वृन्दावन में द्वारकावासी कृष्ण के कार्यकलापों का वर्णन कर रहे थे तो किसी ने माता यशोदा को बतलाया कि कृष्ण ने कई रानियों से विवाह कर लिया है और वे गृहस्थी के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं। यह सुनकर माता यशोदा पश्चाताप करने लगीं कि वे कितनी अभागी हैं कि उन्होंने कैशोरावस्था के बीतते ही अपने बेटे का ब्याह क्यों नहीं कर दिया। इसीलिए वे अपने पुत्र और बहू दोनों की अपने घर में अगवानी नहीं कर पाईं। वे चिल्ला पड़ीं "हे अक्रूर! तुम मेरे सिर पर वज्रपात कर रहे हो।" ये कृष्ण के वियोग में माता यशोदा के पश्चाताप के लक्षण हैं।

इसी प्रकार माता यशोदा को निराशा का अनुभव हुआ जब उन्होंने सोचा, "यद्यपि मेरे पास लाखों गौवें हैं, किन्तु इनके दूध से कृष्ण की तृप्ति नहीं हो पाई। अतएव इस दूध को धिक्कार है। और मुझे भी धिक्कार है, क्योंकि भौतिक सम्पदा होते हुए भी मैं अपने बेटे का न तो सिर सूँघ पा रही हूँ न अपने स्तनों का दूध पिला पा रही हूँ जैसा कि मैं उसके वृन्दावन में रहते हुए करती थी।" यह कृष्ण के वियोग में माता यशोदा की निराशा का चिह्न है।

कृष्ण के एक मित्र ने उनसे कहा, "हे राजीवलोचन! जब तुम गोकुल में रहते थे तो सदैव हाथ में लकुटी लिये रहते थे। अब वही लकुटी यशोदा माता के घर में बेकार पड़ी है और जब भी वे उसे देखती हैं तो वे लकुटी के ही समान जड़ हो जाती हैं।" यह कृष्ण के वियोग में स्तंभित होने का लक्षण है। कृष्ण के वियोग में माता यशोदा इतनी विनीत हो गईं कि उन्होंने ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्माजी से आँखों में आँसू भर कर प्रार्थना की "हे स्रष्टा! क्या आप मेरे पुत्र को मेरे पास वापस नहीं ला देंगे जिससे मैं, क्षण भर के लिए ही सही, उसका दर्शन कर सकूँ?" कभी-कभी माता यशोदा पागल स्त्री की भाँति बेचैनी में आकर नन्द महाराज को दोषी ठहरातीं, "तुम यहाँ महल में क्या कर रहे हो? अरे निर्लज्ज! लोग तुम्हें व्रज का राजा क्यों कहते हैं? यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अपने प्रिय पुत्र से विलग होकर तुम अब भी वृन्दावन में कठोरहृदय पिता के रूप में रह रहे हो?"

किसी ने कृष्ण से माता यशोदा के पागलपन (उन्माद) को इस प्रकार बतलाया, "उन्माद में माता यशोदा कदम्ब वृक्षों को सम्बोधित करतीं और उनसे पूछतीं "मेरा पुत्र कहाँ है?" इसी प्रकार वे पक्षियों तथा भौंरों को सम्बोधित करतीं और उनसे पूछतीं कि कृष्ण तुम्हारे सामने से होकर तो नहीं गुजरा? और क्या वे उसके विषय में कुछ बतला सकते हैं? इस प्रकार माता यशोदा मोह में आकर हर एक से आपके विषय में पूछ रही थीं और सारे वृन्दावन में घूम रही थीं।" कृष्ण के वियोग में यह उन्माद का उदाहरण है।

जब माता यशोदा ने आरोप लगाया कि नन्द महाराज कठोरहृदय हैं तो उन्होंने उत्तर दिया, "हे यशोदा! तुम इतनी उत्तेजित क्यों हो? जरा ध्यान से देखो। तुम्हारा बेटा तो तुम्हारे सामने खड़ा है? इस तरह पगली मत बनो। मेरे घर को शान्त बनाये रखो।" और कृष्ण को किसी मित्र ने सूचना दी कि तुम्हारे पिता नन्द भी इस तरह तुम्हारे वियोग में मोहग्रस्त हैं।

जब वसुदेव की सारी पत्नियाँ कंस की यज्ञ-शाला में उपस्थित थीं तो उन्होंने कृष्ण के मनोहर स्वरूप को देखा और तुरन्त ही वात्सल्य प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा जिससे उनकी साड़ियों के अधोभाग गीले हो गये। यह इच्छापूर्ति से जनित अनुभाव का उदाहरण है।

श्रीमद्भागवत के पहले स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय के श्लोक २९ में कहा गया है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद द्वारका में प्रवेश किया तो सबसे पहले उन्होंने अपनी माता तथा अन्य सौतेली माताओं के चरणों में प्रणाम किया। उन माताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण को तुरन्त ही अपनी गोद में ले लिया और उनके अपार मातृ स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध की धारा और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। भगवान् के आगमन पर दूध और अश्रुधारा का यह मिश्रण उनका पहला अर्पण था।" वियोग के बाद मिलन के सन्तोष का यह एक अन्य उदाहरण है।

ललित-माधव में भी ऐसा ही कथन मिलता है "यह कितना आश्चर्यजनक है कि नन्द की पत्नी यशोदा ने कृष्ण के प्रति अपने वात्सल्य प्रेम के कारण अपने आँसुओं को अपने स्तन-दुग्ध से मिलाकर अपने प्रिय पुत्र कृष्ण का अभिषेक किया है।" *विदग्ध-माधव* में एक भक्त भगवान् कृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित करता है, "हे मुकुन्द! कमलपुष्प की सुगंध से पूर्ण आपके मुख को देखने के बाद माता यशोदा आपके मुखमंडल की चाँदनी से आकृष्ट होकर प्रेमवश इतनी गद्गद् हो उठीं कि

उनके जलकुम्भ जैसे स्तनों के चूचुकों से दूध बहने लगा।" इस तरह वे उस जलकुम्भ को ढकने वाले वस्त्र को सिक्त करके कृष्ण को लगातार दूध पिलाती रहीं।

कृष्ण की माता, उनके पिता तथा गुरुजनों द्वारा कृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम के ये कुछेक लक्षण हैं। वात्सल्य प्रेम अनुभाव के लक्षण तब व्यक्त होते हैं जब कृष्ण को पुत्र रूप में स्वीकार किया जाता है। कृष्ण के प्रति ये निरन्तर दिव्य भाव वात्सल्य प्रेम के स्थायी भाव कहलाते हैं।

यहाँ पर श्रील रूप गोस्वामी बतलाते हैं कि कुछ विद्वानों के अनुसार अभी तक जिन तीन रसों—दास्य, सख्य तथा वात्सल्य—का वर्णन किया गया है वे कभी-कभी मिश्रित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, बलराम के सख्य भाव दास्य तथा वात्सल्य से मिश्रित है। इसी प्रकार कृष्ण के प्रति राजा युधिष्ठिर का आकर्षण भी वात्सल्य तथा दास्य का मिश्रण है। कृष्ण के नाना उग्रसेन का दिव्य रस दास्य तथा वात्सल्य प्रेम से मिश्रित है। वृन्दावन की समस्त सयानी गोपियों का स्नेह वात्सल्य, दास्य तथा सख्य भाव का मिश्रण है। माद्री के पुत्र नकुल तथा सहदेव का स्नेह तथा इसी प्रकार नारद मुनि का स्नेह सख्य तथा दास्य का मिश्रण है। शिवजी, गरुड़ तथा उद्धव का स्नेह दास्य तथा सख्य का मिश्रण है।

अध्याय चवालीस

मधुर भक्तिरस

माधुर्य प्रेम में कृष्ण के प्रति शुद्ध भक्त का आकर्षण मधुर भक्ति रस कहलाता है। यद्यपि ये ऐसे मधुरभाव लेशमात्र भी भौतिक नहीं होते तो भी आध्यात्मिक प्रेम तथा भौतिक प्रेम के कार्यकलापों में कुछ न कुछ सादृश्यता तो होती ही है। अतएव जो लोग एकमात्र भौतिक कार्यकलापों में रुचि रखते हैं वे इस आध्यात्मिक मधुर रस को समझ नहीं पाते और उन्हें ये भक्तिमय आदान-प्रदान अत्यन्त गुह्य प्रतीत होते हैं। इसलिए श्रील रूपगोस्वामी मधुर रस का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

मधुर रस के उद्दीपन कृष्ण तथा उनकी प्रियतमाएँ यथा राधारानी तथा उनकी परम संगिनियाँ हैं। भगवान् कृष्ण का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं, न तो कोई उनके तुल्य है और न उनसे बढ़ कर। उनका सौन्दर्य भी अद्वितीय है और चूँकि वे मधुर रस की लीलाओं में सबसे बढ़कर हैं अतएव वे समस्त मधुर रस के मूल लक्ष्य (आलम्बन) माने जाते हैं।

जयदेव गोस्वामी विरचित *गीतगोविन्द* में एक गोपी अपनी सखी से कहती है, "कृष्ण इस जगत में समस्त आनन्द के आगार हैं। उनका शरीर कमल पुष्प की भाँति कोमल है और गोपियों के साथ उनका मुक्त आचरण, जो तरुणियों के प्रति तरुणों के आकर्षण सा प्रतीत होता है, दिव्य मधुर रस का विषय (आलम्बन) है।" शुद्ध भक्त गोपियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करता है और गोपियों की पूजा इस प्रकार करता है "मैं उन तरुण गोपांगनाओं को सादर नमस्कार करता हूँ जिनके स्वरूप अत्यन्त आकर्षक हैं। वे अपने सुन्दर आकर्षक स्वरूप से भगवान् कृष्ण की पूजा कर रही हैं।" इन समस्त तरुण गोपियों में से श्रीमती राधारानी सर्वप्रमुख हैं।

श्रीमती राधारानी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है, "उनकी आँखें चकोरी की आँखों के आकर्षक स्वरूप को पराजित करने वाली हैं। जो कोई राधारानी के मुख को देखता है वह तुरन्त ही चन्द्रमा के सौन्दर्य से घृणा करने लगता है। उनके शरीर का रंग सोने के सौन्दर्य को परास्त करने वाला है। आओ, श्रीमती राधारानी के

दिव्य सौन्दर्य का दर्शन करें।" राधारानी के प्रति अपने आकर्षण का वर्णन कृष्ण स्वयं इस प्रकार करते हैं "जब मैं राधारानी के सौन्दर्य का आनन्द उठाने के लिए उनसे हँसी करता हूँ तो वे इन हास्य वचनों को बड़े ध्यान से सुनती हैं, किन्तु अपने शारीरिक स्वरूप एवं प्रतिवचनों से वे मेरी उपेक्षा करती हैं। तो भी उनकी इस उपेक्षा से मुझे अपार हर्ष होता है, क्योंकि इससे वे इतनी सुन्दर लगने लगती हैं कि मेरा हर्ष सैकड़ों गुना बढ़ जाता है।" *गीत-गोविन्द* में भी ऐसा ही कथन प्राप्त होता है जहाँ यह कहा गया है कि जब कंस के शत्रु श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी का आलिंगन करते हैं तो वे उनके प्रेम में बँध जाते हैं और अन्य समस्त गोपियों का साथ छोड़ देते हैं।

रूप गोस्वामी कृत *पद्यावली* में कहा गया है कि जब गोपियाँ कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनती हैं तो वे अपने परिवार के गुरुजनों की सारी झिड़कियों को तुरन्त भुला देती हैं। वे अपना अपयश तथा अपने पतियों के दुर्व्यवहारों को भूल जाती हैं। उनका एकमात्र विचार कृष्ण की खोज में बाहर निकलना रह जाता है। जब गोपियाँ कृष्ण से मिलती हैं तो उनके कटाक्ष एवं उनमें हास-परिहास के विनिमय को *अनुभाव* कहते हैं।

ललित-माधव में रूप गोस्वामी बतलाते हैं कि कृष्ण की भौहों की मटकन यमुना के समान है और राधारानी की हँसी चाँदनी जैसी है। जब नदी के किनारे पर यमुना तथा चाँदनी का मिलन होता है तो जल का स्वाद अमृत जैसा हो जाता है और उसके पीने से परम तुष्टि प्राप्त होती है। यह हिमराशि के समान शीतलता प्रदान करता है। इसी प्रकार *पद्यावली* में राधारानी की एक नित्य सहचरी कहती है, "हे चन्द्रमुखी राधारानी! यद्यपि तुम्हारा सारा शरीर अत्यन्त सन्तुष्ट लगता है फिर भी तुम्हारी आँखों में आँसू हैं। तुम्हारी वाणी रुक रही है और तुम दीर्घ उच्छ्वास ले रही हो। इन चिह्नों से मुझे लगता है कि तुमने कृष्ण की वंशी की ध्वनि अवश्य सुनी है जिससे तुम्हारा हृदय द्रवित हो रहा है।"

इसी *पद्यावली* में एक वर्णन आता है जिसे मधुर रस में निराशा का सूचक माना जाता है। श्रीमती राधारानी ने कहा, "हे कामदेव! तुम मेरे शरीर में अपने बाण चलाकर मुझे उत्तेजित मत करो। हे वायु! फूलों की सुगन्धि से मुझे जागृत मत करो। मैं इस समय कृष्ण की प्रेमभंगी से वंचित हूँ, अतएव ऐसी दशा में इस व्यर्थ शरीर को धारण करने से मुझे क्या लाभ होगा? किसी भी जीव को ऐसे शरीर की आवश्यकता नहीं है।" यह कृष्ण के प्रति निराशाभाव का लक्षण है।

इसी प्रकार *दानकेलि-कौमुदी* में कृष्ण की ओर इशारा करते हुए श्रीमती राधारानी कहती हैं, "जंगल का यह चतुर बालक नीलकमल की शोभा वाला है और यह संसार की सारी तरुणियों को आकृष्ट कर सकता है। यह अपने दिव्य शरीर का स्वाद चखा कर मुझे उत्तेजित करता है और अब मुझसे और अधिक नहीं सहा जाता। मैं अब उस मादा हथिनी के समान लगती हूँ जिसे हाथी ने उन्मत्त कर दिया हो।" यह कृष्ण प्रेम में प्रसन्नता (हर्ष) का उदाहरण है।

मधुर रस का स्थायी भाव ही शारीरिक उल्लास का मूल कारण है। *पद्यावली* में संभोग के इस मूल कारण का वर्णन हुआ है जब राधारानी अपनी एक नित्य सहचरी से कहती है, "हे सखी! यह छोकड़ा कौन है जिसकी निरन्तर मटकने वाली पलकों ने उसके मुख की शोभा को बढ़ा दिया है और मधुर रस के लिए मेरी कामना को आकृष्ट किया है। उसके कानों में अशोक पुष्पों की कलियाँ विभूषित हैं और उसने पीताम्बर धारण कर रखा है। इस छोकड़े ने अपनी वंशी की ध्वनि से मुझे पहले ही अधीर बना दिया है।"

राधा-कृष्ण का मधुर प्रेम किसी व्यक्तिगत कारण से कभी विचलित नहीं होता। राधा-कृष्ण के मध्य मधुर प्रेम की अविचल प्रकृति का वर्णन इस प्रकार हुआ है, "श्रीकृष्ण से थोड़ी ही दूर पर माता यशोदा थीं और कृष्ण अपने सारे मित्रों से घिरे थे। उनकी दृष्टि के समक्ष चन्द्रावली थी और उसी समय व्रज के प्रवेशद्वार के एक पत्थर पर वृषासुर खड़ा था। लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी जब कृष्ण ने राधारानी को लताकुंजों की आड़ में खड़े देखा तो उनकी सुन्दर भौहें बिजली की गति से उनकी ओर मुड़ गईं।"

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है, "आँगन के एक कोने पर शंखासुर का शव पड़ा था जिसे अनेक सियारों ने घेर रखा था। दूसरी ओर अनेक आत्मसंयमी विद्वान् ब्राह्मण थे। वे सुन्दर स्तुतियाँ कर रहे थे जो ग्रीष्म में शीतल समीर सी सुहावनी लग रही थीं। कृष्ण के समक्ष बलदेवजी खड़े शीतलता प्रदान कर रहे थे। किन्तु शीतलतादायी तथा उपद्रवकारी इन विभिन्न परिस्थितियों में भी कृष्ण का राधारानी के प्रति मधुर रस का कमल मुरझाया नहीं।" राधारानी के प्रति कृष्ण के इस प्रेम की उपमा प्रायः खिले कमल से दी जाती है। अन्तर इतना ही रहता है कि कृष्ण का प्रेम नित्य-प्रति सुन्दर लगता है, म्लान नहीं होता।

मधुर प्रेम को दो भागों में बाँटा जाता है— *विप्रलम्भ* अर्थात् वियोग में मधुर प्रेम तथा *सम्भोग* अथवा प्रत्यक्ष संसर्ग में मधुर प्रेम। *विप्रलम्भ* के भी तीन उपविभाग होते हैं १) *पूर्वराग*—प्रारम्भिक आकर्षण २) *मान*—बनावटी क्रोध तथा ३) *प्रवास*—दूरी के कारण वियोग।

जब प्रेमी तथा प्रेमिका को स्पष्ट अनुभूति होती है कि वे एक-दूसरे से मिल नहीं पा रहे हैं तो यह अवस्था *पूर्वराग* कहलाती है। *पद्यावली* में राधारानी ने अपनी संगिनी से कहा "हे सखी! मैं यमुना तट जा रही थी कि अचानक एक सुन्दर बालक जिसका रंग गहरे नीले बादल के समान है मेरी दृष्टि के सामने आ गया। उसने मेरी ओर इस तरह निहारा जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। किन्तु जब से यह घटना घटी है तब से मुझे खेद है, मैं अपना मन गृहकार्यों में नहीं लगा पा रही।" यह कृष्ण के प्रति पूर्वराग का उदाहरण है। *श्रीमद्भागवत* में (१०.५३.२) कृष्ण ने रुक्मिणी के यहाँ से आये ब्राह्मण दूत से कहा, "हे ब्राह्मण! मैं भी रुक्मिणी के ही समान रात भर सो नहीं पाता और मेरा मन उन्हीं में लगा रहता है। मैं जानता हूँ कि उसका भाई रुक्मी मेरे विरुद्ध है और उसी के कहने-सुनने से रुक्मिणी के साथ मेरा विवाह रद्द कर दिया गया है।" यह पूर्वराग का दूसरा उदाहरण है।

मान अथवा बनावटी क्रोध सम्बन्धी निम्नलिखित घटना *गीत-गोविन्द* में वर्णित है, "जब श्रीमती राधारानी ने देखा कि कृष्ण अनेकानेक गोपियों के साथ आनन्द-भोग कर रहे हैं तो उन्हें कुछ ईर्ष्या हुई, क्योंकि इससे उनकी विशेष प्रतिष्ठा धूमिल पड़ रही थी। इसलिए वे तुरन्त वहाँ से चली गईं और एक लताकुंज में बैठ गईं जहाँ भौंरे गुंजार कर रहे थे। फिर अपने को लताओं के पीछे छिपाते हुए अपनी एक सखी से वे अपनी व्यथा कहने लगीं।" यह बनावटी विरोध का उदाहरण है।

प्रवास का उदाहरण *पद्यावली* में दिया गया है। वह इस प्रकार है, "जिस शुभ दिन से कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रस्थान किया, श्रीमती राधारानी अपने सिर को अपने एक हाथ से दबाये निरन्तर आँसू गिरा रही हैं। अब उनका मुख सदा गीला रहता है, अतएव उन्हें क्षण भर भी सोने का अवसर नहीं है।" मुख भीगा होने पर नींद नहीं आती। अतएव जब राधारानी कृष्ण के वियोग के कारण निरन्तर रो रही थीं तो उनके सोने का प्रश्न ही नहीं उठता। *प्रह्लाद-संहिता* में उद्धव कहते हैं, "कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर भगवान् गोविन्द सदैव आप लोगों (गोपियों) का चिन्तन करते रहते हैं और वे अपना नियमित भोजन भी नहीं करते, न ही समुचित विश्राम कर पाते हैं।"

जब प्रेमी तथा प्रेमिका मिलते हैं और प्रत्यक्ष सम्पर्क से एक-दूसरे का भोग करते हैं तो यह अवस्था *सम्भोग* कहलाती है। *पद्यावली* में इस प्रकार का कथन आया है "कृष्ण ने इतनी पटुता से श्रीमती राधारानी का आलिंगन किया मानो वे मोरों के नृत्योत्सव को मना रहे हों।"

इस प्रकार श्री रूप गोस्वामी *भक्तिरसामृतसिन्धु* की पाँचवीं लहरी समाप्त करते हैं। वे उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं जो अपने सनातन स्वरूप गोपाल रूप में प्रकट हुए।

इस प्रकार *भक्तिरसामृतसिन्धु* के कृष्ण के साथ पाँच प्रारम्भिक सम्बन्ध विषयक तृतीय भाग का भक्तिवेदान्त सार पूर्ण हुआ।